अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

फरवरी, २०१२

अनुभव के डग

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ३७ अंक : २
फरवरी,२०१२
माघ-फाल्गुन वि.सं. २०६८

❑
सम्पादक
रमेश थानवी

❑
प्रबन्ध संपादक
प्रेम गुप्ता

❑
प्रकाशन संपादक
दिलीप शर्मा

❑
- एक प्रति पन्द्रह रुपए
- वार्षिक सहयोग राशि एक सौ पचास रुपए
- संस्थाओं के लिए दो सौ पचास रुपए
- व्यक्तिगत सदस्यों के तीन वर्ष का चार सौ रुपए
- संस्थाओं के लिए तीन वर्ष का छः सौ रुपए
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि पन्द्रह सौ रुपए

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर-३०२ ००४
फोन -२७०७६९८, २७००५५९
फैक्स - ०१४१-२७०७४६४
ई मेल - raeajaipur@indiatimes.com
thanviramesh@gmail.com

क्रम

पाठक अब इंटरनेट पर अनौपचारिका नीचे लिखे लिंक पर ऑन लाइन पढ़ सकते हैं -
http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/feb-2012
अनौपचारिका के पिछले अंक भी आप नीचे लिखे लिंक पर देख सकते हैं -
http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/jan-2012

जयपुर से हनुमान सहाय

दिसम्बर अंक में आयी सामग्री भी शिक्षक मन को सरोबार कर गई। संपादकीय में प्रश्न उठा 'शिक्षा का सच क्या है ?' और दयालचन्द्र जी के शब्दों में उत्तर था 'हूं अणभणियों शिक्षित हूं' जिन्हें हम लोग आदर्श गुरु और शिक्षक मानते हैं वे कह रहे हैं कि मैं भी अभी तो '**अनपढ़**' ही हूं। तो शिक्षा एक गहरा खजाना है उसमें निरन्तर डूबते रहने की गुंजाइश है और यही बात नारायणभाई देसाई के वक्तव्य में आयी 'हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे।' जाना तो यह कि 'न जाना कुछ भी' तो हमारी तो यही इच्छा है कि इस 'न जाना' तक पहुंचने के लिए शिक्षा सागर में आप जैसे शिक्षकों के साथ डुबकियां लगाकर अनंत ज्ञान जानते जावें।'

सरकार और शिक्षा संस्थाओं को चाहिये कि वे अपने 'बालकों' की बेन कार्सन माता जैसी बन सके। जिसने बालक में ईश्वर के प्रति एवं स्वयं के प्रति विश्वास, स्वाध्याय, मीठा एवं कठोर नियंत्रण... देकर बेन को एक सफल व्यक्तित्व बनने में योगदान दिया-लोकतंत्र में लोक की असलियत वसीम अकरम जी ने बखूबी बेनकाब की है। ❑

नर-वानर

❑
डॉ. रणजीत

थोड़ी अक्ल मिली है जिसको
यह नर वह वानर है
नहीं फरिश्ता गिरा भूमि पर
यह विकसित बन्दर है।

फिर भी इस बन्दर में क्षमता
ग़जब दिखाई देती
यह चाहे तो कर सकता है
आसमान में खेती।

लेकिन यह तो बना रहा है
स्टार वार के नक्शे
माचिस इसके हाथ, जलेगी
पूरी दुनिया भक् से।

इसके ही है हाथ, स्वयं में
यह सद्बुद्धि जगाए
अपने थोड़े वंशाणु बदल
खुद को इंसान बनाए।

नहीं तो अपने पांव कुल्हाड़ी
नहीं सिर्फ मारेगा
यह जीवन, जलवायु, धरित्री
सबको संहारेगा। ❑
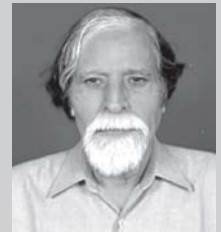
फ्लेट, २०१ मल्टी सफायर अपार्टमेंट
फर्स्ट मेन रोड सुद्दागुंटे पाल्या
बैंगलोर-५६००२९
मो.०९३४१५५६६७३

शिक्षा में आशा

पिछले अंक के संपादकीय में हमने नव वर्ष पर आशा की चर्चा करते हुए पाठकों को अपनी शुभकामनाएं प्रेषित की थीं। तब भी आशा और शिक्षा से जुड़ी कुछ बातों पर चर्चा करने का मन था, मगर संपादकीय की अपनी शब्द सीमाएं हैं। हमें अब भी जरूरी लग रहा है कि इस अंक में भी हम शिक्षा में आशा की बात करें।

शिक्षा में **आशा और उम्मीद** का बड़ा महत्त्व है। यदि हम आशावान न बने रहें तो निराशा हमको बड़ी आसानी से घेर सकती है। निराशा जड़ता को जन्म देती है। प्रमाद को पनपाती है और हमें हताशा का शिकार बनाती है। जरूरी यह है कि हम **आशा और उम्मीद** का पोषण करें। उन्हें सदा बलवती बनाये रखें और उनके फलवती बन जाने की दिशा में सदा प्रयत्नशील रहें। हमारा परम्परागत समाज भी इस तथ्य को ठीक से समझता था। यही वजह थी कि हमारी **लोक-संस्कृति** में **आसमाता** का एक रूप रचा गया था। उसी रूप की बाकायदा **पूजा-उपासना** होती थी। उस उपासना में **आसमाता** के व्रत की एक **कथा** का सृजन हुआ था और अधिसंख्य घरों में वर्ष के किसी एक या दो विशेष दिनों में **आसमाता** का व्रत रखा जाता था।

लोक साहित्य में आसमाता की जो व्रत कथा कही जाती रही उसकी विवेचना बहुत जरूरी लगती है। उस कथा में एक साधारण आदमी उज्जैन का राजा बन जाता है। राजा बनने की लालसा रखने वाले लोग उसके खिलाफ कई षडयंत्र करते हैं मगर फिर भी राजा के रूप में एक हथिनी उसका ही वरण करती है। जब-जब वो हथिनी इस आम आदमी को चुनती है तब-तब शोर होता है - **हथिनी-भूली, हथिनी-भूली, हथिनी-भूली।** भूल हथिनी से नहीं होती है। वह चौथी बार भी इस मामूली आदमी को गड्ढे से निकालकर माला पहना देती है और उसे उज्जैन के सिंहासन पर आसीन कर देती है।

यह कथा कहती है कि अन्त तक आशा को बनाये रखना, आशा को पा लेने का मूल आधार है। कभी भी निराश नहीं होना और आशा को निरन्तर सींचते रहना शिक्षा का भी मूलमंत्र है।

पाठको की जानकारी के लिए यह उल्लेख भी जरूरी है कि दुनिया के प्रसिद्ध शिक्षा चिंतक **पाउलो फ्रेरे** ने एक पुस्तक लिखी थी-**पैडेगॉजी ऑफ होप** अर्थात् **आशा और उम्मीद का शिक्षा शास्त्र**। **पाउलो फ्रेरे** ने इससे पहले जगत् को चकित करने वाली जो पुस्तक लिखी थी उसका नाम था **पैडेगॉजी आफ द ओप्रेस्ड** अर्थात् **दलितों का शिक्षा शास्त्र**। **फ्रेरे** की इस किताब ने शिक्षा जगत् में उथल-पुथल मचा दी थी। उस उथल-पुथल का परिणाम इतना बड़ा हुआ कि **फ्रेरे** के अपने देश **ब्राजील** ने उनको देश निकाला दे दिया था। **फ्रेरे** पूरी दुनिया को अपने शिक्षा चिंतन से अवगत कराते रहे, शिक्षा के कुछ प्रयोग करते रहे और उनकी कीर्ति और यश निरन्तर फैलता रहा। **ब्राजील** के शासकों को अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने **फ्रेरे** को वापस अपने देश में आमंत्रित किया। उनको सम्मानित किया और उन्हें गरिमामय पद भी दिया गया।

फ्रेरे स्वयं अपने शिक्षा-दर्शन पर विचार करते रहे। चिंतन चलता गया और प्रयोग भी चलते रहे। दलितों के शिक्षा-शास्त्र को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने जो नयी पुस्तक दी उसी का नाम **आशा और उम्मीद का शिक्षा शास्त्र** है। शिक्षा का काम करने वाले हर नौजवान कार्यकर्ता के लिए, शिक्षकों के लिए और माता-पिताओं के लिए यह पुस्तक एक अत्यन्त उपयोगी एवं पठनीय पाठ्य सामग्री है। इस पुस्तक की **प्रस्तावना** ही इतनी असरदार है कि उसे पढ़ लेने के बाद हर पाठक पूरी पुस्तक पढ़ना चाहेगा। दिल्ली स्थित एक प्रकाशक **ग्रंथ-शिल्पी** ने **उम्मीदों का शिक्षा-शास्त्र** नाम से इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया है।

कुछ वर्ष पहले जापान में **होप** नाम से एक नया शिक्षा-कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। यह कार्यक्रम एक जापानी शिक्षा परियोजना **एज्यूकेशन फॉर सस्टेनेबल डवलपमेंट** के अन्तर्गत प्रारम्भ हुआ था। इसका परिचय पाना भी रोचक बात होगी। पाठक इसे इंटरनेट पर ढूंढ सकते हैं। वैसे इस कार्यक्रम का नामकरण अंग्रेजी के शब्द **होप** के हर अक्षर के साथ नया अर्थ जोड़कर किया गया था। यहां **एच** का मतलब **होलिस्टिक** अर्थात् **पूर्णता प्रधान** था, **ओ** का मतलब **ऑनरशिप** अर्थात् **मिल्कियत** था, **पी** का मतलब **पार्टिसिपेटरी** अर्थात् **भागीदारी** था और **ई** का मतलब **एम्पावरमेंट** अर्थात् **सशक्तिकरण** था। इस प्रकार एक शब्द में इस कार्यक्रम की विशेषताओं को पिरो दिया गया था। आशय यही था कि **शिक्षा समाज को नयी आशा देती है, उसे अपने ही समाज में मालिकाना हक देती है, विकास के कार्यक्रमों में उसकी भागीदारी को सुनिश्चित करती है और उसका इतना सशक्तिकरण करती है कि वह अपने लोकतांत्रिक समाज में अपनी बात कारगर तरीके से कह सके और वह बात सुनी भी जाये।** पाठकों को शिक्षा में आशा और उम्मीद की बात पर आगे विचार करना चाहिए और इससे जुड़ी सामग्री को भी खोज निकालकर पढ़ने का आनन्द लेना चाहिए। ❑

रमेश थानवी

मेरी छात्राएं

❑
डॉ. पद्मजा शर्मा

किसी शिक्षिका के लिये अपनी छात्राओं के साथ सहेलियों सा व्यवहार कितना सुखदायी होता है ? इसका अनुमान आप पद्मजा के इस आलेख से लगा सकते हैं। कक्षा में छात्राओं की मन: स्थिति के अनुसार अध्यापन में नये-नये रंग भरते हुए खासा लचीलापन रखने का काम कोई सधा हुआ अध्यापक ही कर सकता है। अध्यापन साधना है और आनन्द भी। इसमें केवल डूबने, उतरने की आवश्यकता होती है और तभी कोई अध्यापक अपने अध्यापन को एक सृजनात्मक क्रिया में बदल सकता है। वैसे भी अध्यापन अपने आप में एक सृजनात्मक क्रिया है। यह काम न नीरस है न बोझिल। आपसी रिश्तों में रस घोलने की सामर्थ्य रखने वाला अध्यापक इस काम को आनन्ददायी बना सकता है और अपने लिये एक अप्रतिम जीवनानुभव। ❑ सं.

आज आपसे एम.ए. की पत्रकारिता की क्लास व छात्राओं की बात करूंगी। मैं अपनी छात्राओं को पैंतालीस मिनट के पीरियड में कुल मिलाकर पैंतीस मिनट सिलेबस के अनुरूप पढ़ाई कराती थी और उन्हें पढ़ाने के लिए खुद भी पढ़ती थी। आप आश्चर्य करेंगे कि कब कक्षा का समय पूरा हो जाता पता ही नहीं चलता था न लड़कियों, को न मुझे। यह अलग बात है कि मैं घंटी बजते ही किताब बंद कर देती थी। मैं नहीं चाहती थी कि अगले पीरियड वाले टीचर को इंतजार करवाया जाये। मेरा वर्ष भर का निर्धारित सिलेबस समय से पहले ही पूरा हो जाता था और छात्राओं की उस विषय में कोई शिकायत कभी नहीं आयी और उन्हें कोई दिक्कत भी नहीं हुई। न नोट्स की न विषय को समझने की। छात्राएं चाहती थीं कि उन्हें समझाने के साथ ही विषय के नोट्स भी मिलें। मैं थोड़ा समझाकर नोट्स देती और कभी कोई समस्या आती तो भी किसी एक दिन बैठ कर सारी समस्याओं का समाधान कर देती। छात्राओं को इस विषय में अंक भी आनुपातिक दृष्टि से अन्य विषयों से अधिक ही आते थे। पत्रकारिता में यूं तो विषय विशेष पर कई किताबें मिल जाती हैं पर अच्छी सामग्री कम ही मिलती है। अधिकतर किताबों में दोहराव ही होता है। मौलिक सामग्री की गुंजाइश बहुत कम होती है। मैं कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें खोज खोज कर पढ़ती और नोट्स बनाती थी। यह मेरी आदत है कि कोई काम करो तो मन-मस्तिष्क लगाकर करो। वरना हाथ जोड़ लो।

मैं अपने लेक्चर के बीच-बीच में छात्राओं को उनके सपनों के बारे में, उनकी पसंद-नापसंद के बारे में, घर के बारे में, आर्थिक परिस्थितियों के बारे में, उनकी

मुश्किलों-परेशानियों के बारे में पूछती रहती थी। उनमें छिपी प्रतिभा को भी मैं टटोलती और तलाशती रहती थी। उनसे कुरेद-कुरेद कर बातचीत करती थी। यह बातचीत सर्वथा अनौपचारिक और आत्मीय होती थी। कक्षा से बाहर और खुले आसमान के नीचे; उनके साथ बैठकर। छात्राएं घुल मिल जाती थीं। संवाद यहां भी शुरु हो जाता था। कई दृष्टांत और कई उद्धरण याद आते थे।

आजादी की लड़ाई में किन हिन्दी पत्रों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आवाज उठायी ? हिन्दी का पहला समाचार पत्र कौन सा था आदि का उल्लेख यदि सिलेबस में था तो मैं छात्राओं से पूछती कि आप कौनसा पत्र या पत्रिकाएं पढ़ती हैं ? नहीं पढ़ती हैं तो ये पत्रिकाएं पढ़ना शुरू कीजिए, उनमें क्या अच्छा लगता है। फिर यह भी पूछती कि किस कॉलम में रुचि है। किस विधा में दिलचस्पी है जैसे कोई कहती हम कहानी पढ़ते हैं। कोई कहती कि मैं कविता पढ़ती हूं। फिर आगे यह सवाल होता कि पढ़ती हैं तो कुछ लिखती भी होंगी जैसे कि डायरी, कविता, कहानी, कोई अविस्मरणीय घटना वगैरह तो लड़कियां पहली बार संकोच करतीं बताने में, पर थोड़ा मोटिवेट करने पर बताती थीं कि, हां हम डायरी लिखते हैं; कि कविता लिखते हैं; कि कहानी लिखना चाहते हैं। लिखना बहुत लड़कियां चाहती थीं पर उनके पास भावों के अनुरूप भाषा नहीं होती थी। इच्छा के होते हुए भी उनके विचार, भाव मन में ही दबे रह जाते थे। मैं उन्हें तब बताती कि आप साहित्य से अपनी रुचि की विधा से जुड़ी पत्रिकाएं पढ़ें, समाचार पत्र में यह कॉलम पढ़ें, फलां लेखक की फलां रचना पढ़ें कुछ समय बाद उनसे फिर पूछती किस-किस ने क्या पढ़ा, नहीं पढ़ा तो पढ़ें।

अगर क्लास में पच्चीस लड़कियां हैं तो उनमें कम से कम पांच छ: लड़कियां साल की आखिर तक अपनी प्रतिभा, अपनी कहानी, कविता के साथ जरूर सब के सामने आतीं। वे अपने सिलेबस के अनुरूप पढ़ाई पर भी पूरा ध्यान देती थीं। हम बारी-बारी उनसे वे रचनाएं क्लास में जरूर सुनते। इससे मुझे उनके रुझान और उनकी मन: स्थिति को जानने में भी मदद मिलती थी। उन्हें भी यह लगता था कि वे औरों से थोड़ी अलग हैं।

उनकी सब के बीच में बोलने की झिझक भी कम होती। साल में संबंधित विधा पर प्रतियोगिता भी करवाती थी। इनाम मिलने से उनका उत्साह भी बढ़ता था। साल के खत्म होते होते तो वे लड़कियां खुलकर उस विषय पर बातचीत भी करती थीं। एक लड़की ने एक दिन कहा कि वह अपनी कविता नहीं सुना सकती। मैंने पूछा क्यों ? उसने झिझकते हुए बताया कि वह प्रेम को लेकर है तो मैंने उसे बताया कि बड़े से बड़ा कवि भी सबसे पहली रचना प्रेम पर ही लिखता है। प्रेम जीवन में है तो इसमें शर्म की कौनसी बात है । यह तो सामान्य क्रिया है जो बताती है कि हम एक सामान्य इंसान हैं। हमारे कवि तो कहते हैं कि *वियोगी होगा पहला कवि। आह से उपजा होगा गान।* कविता का हृदय से, हृदय का प्रेम से संबंध है जिसे कोई नहीं नकार सकता। बड़े बड़े कवि भी । तो प्रेम कविता लिखना अपराध नहीं है। यह बहुत ही सहज है।

कोई लड़की चाहती थी कि उसे स्कूल में टीचर बनना है तो किसी को कॉलेज में पढ़ाने की इच्छा थी। कोई बैंक के एग्जाम देना चाहती थी तो किसी को यह नहीं पता था कि स्लैट, क्लैट, नैट की एग्जाम कैसे दी जाती है ? कहां उनकी तैयारी कराई जाती है ? किस किताब से पढ़ें ? किस टीचर से गाइडेंस लें तो उन्हें इस तरह की बातें भी मैं अपनी क्लास में बताती रहती थी। क्लास के बाद कभी कभी फोन पर भी उनकी उलझनें सुलझाती थी।

तब एक ही सोच रहती थी कि इस तरह से पढ़ाया जाए कि छात्राओं को बोरियत न हो। विषय के ज्ञान के साथ ही जीवन में आगे बढ़ने की राह खोजना भी आसान हो। इस तरह की कोशिश भी मैं करती थी। मैं सदा चाहती थी कि छात्राएं मुझे कहें कि आप क्लास कब ले रही हैं कि हमारा फलां फलां पीरियड खाली है क्या आप यह पीरियड भी इंगेज कर सकती हैं ? मैं हमेशा यह चाहती और सोचती थी कि मैं कुछ इस तरह क्लास में खुद को प्रेजेंट करूं कि छात्राओं को लगे कि मैं उनकी दोस्त जैसी हूं । वे बहुत ज्यादा दूरी महसूस ना करें। लेकिन एक निश्चित दूरी भी बनाए रखें जिसके तहत वे मेरी कही जरूरी बातों का खयाल रखें। समय-समय पर अचानक लिए गए टेस्ट भी दें, कभी-कभी तैयारी के साथ भी दें। इसके लिए *उनकी मानसिकता को समझना जितना जरूरी होता है उतना ही यह भी जरूरी होता है कि वे आप में यकीन करें और आप उन्हें खुद में यकीन करवाएं और यह भी उन्हें लगना चाहिए कि आप कुछ कुछ उन जैसी ही हैं। अगर मैं आज कॉलेज में टीचिंग कर रही हूं तो ये भी कल यह काम कर सकती हैं। बस थोड़े जुनून की, मेहनत की, ईमानदारी की, जरूरत है। जरूरत है विषय के ज्ञान की । रटना जरूरी नहीं, समझना ज्यादा जरूरी है।*

वे क्लास में आपके आदेशों की, निर्देशों की पालना करेंगी पर पहले आपको विश्वास जगाना होता है । इसके लिए एक बार मैंने उन्हें अपनी एक कमजोरी भी उनके साथ बांटी कि मुझे सन् याद नहीं रहते। एक दिन सारे पत्रों के नाम सन् सहित बताए फिर लिखवाए। उस दिन एक लड़की बड़ी मायूस होकर लेक्चर समाप्त होने के बाद मेरे पास आयी और बोली मैम हम भी आपके जैसे लेक्चरर बनना चाहते हैं पर यह संभव नहीं हो सकता। हम बन नहीं सकते। कम से कम आपके जैसे तो नहीं। मैंने पूछा ऐसा

कविताएं

❑

रेमिका थापा

एक

जब से आये हैं बांसों में फूल
गांव में अकाल पड़ा है।

गांव के बच्चे रोते-रोते सो जाते हैं
गांव खामोश है।
खामोश रहता है।

गांव को पता नहीं काला पैसा कैसा होता है
गांव को पता नहीं काला बाजारी कैसी होती है
अचानक गांव में अकाल पड़ता है
इस अकाल में
गांव को ही बीज की रक्षा
करनी पड़ती है

आसान नहीं है गांव के लिए
भूखे-नंगे बच्चों के बीच
बीज की रक्षा करना।
कोई कुछ कहता नहीं
गांव अभी अपने फौजी बेटे की
इंतजार में बैठा है।

दो

गांव में दुख है
लोग गांव में मेहनत न कर सकने वाले को
नामर्द कहकर गालियां बकते हैं
जमाने को समझ होती तो
गांव में उद्यमियों का व्यापक जमावड़ा होता।

चाय के गाछों में, कुनैन के पौधों में
हाट-बाजारों में, दफ्तरों में
मैदानों में पराक्रमी लोगों का पसीना बहता है।

गांव से ही देश चलता है
गांव के उद्यम को ही मुल्क खाता है।

जमाने को समझ होती तो
वह गांव के पराक्रम को जान पड़ता
घर में कमाऊ बेटे की तरह
गांव अभी गहरे चिंतन में डूबा है।❑

समकालीन भारतीय साहित्य द्वैमासिक पत्रिका
नवम्बर-दिसम्बर,२०१० अंक से साभार

क्यों कहा और क्यों सोचा आपने ? उस लड़की ने बड़ी मासूमियत से कहा मैम आपको इतने नाम और सन् याद रह जाते हैं। हमें तो ये सन् याद ही नहीं रहते हैं। आज याद किये भूल गये इस डर से तो हमने इतिहास विषय नहीं लिया वरना उसमें हमारी रुचि कम न थी। तब मैंने उसे समझाया कि मैं तो जब क्लास में आती हूं तब आप लोगों के लिए याद कर के आती हूं वरना सन् तो मुझे भी कहां याद रहते हैं। चार दिन बाद पूछोगे तो मेरी भी हालत आपके जैसी ही होगी। तब मैंने उसे कहा कि आप एक दिन मुझसे अच्छी टीचर साबित होंगी यह मैं अपने अनुभव से कहती हूं क्योंकि आपको अपनी कमजोरी का अहसास है। तब उसने यह निश्चय किया कि वह लेक्चरर ही बनेगी। उसका खोया उत्साह लौट आया वह पहले से ज्यादा रुचि से पढ़ने लगी।

असल में तब मेरे पास समय की कमी रहती थी। मैं छात्राओं को जिस समय क्लास के लिए बुलाती वे आती थीं। पीरियड लगातार पढ़ाती तो भी शौक से पढ़ लेती। मैं उन्हें यह अहसास कराती कि वे मेरे लिए खास हैं । मैं जानती थी कि उन्हें मेरी क्लास में पढ़ने में आनंद आता था। उन्हें पढ़ने में आनंद इसलिए आता था कि मुझे पढ़ाने में आता था। मुझे इसलिए आता था कि मैं उन्हें पढ़ाने के लिए पढ़ती थी। वे बहुत अच्छी, प्यारी न्यारी छात्राएं थीं। उनकी यादें जुगनुओं-सी मेरे जीवन में चमकती रहती हैं। ❑

१५ बी, पंचवटी कॉलोनी,
सेनापति भवन के पास, जोधपुर
मो.९४१४७२१६१९

कहानी बेन कार्सन की

❑
अपर्णा मक्कड़

जीवनपर्यन्त कष्ट देने वाली किस्मत के साथ पैदा होने वाले बालकों के प्रति सम्पूर्ण करुणाभाव से अपने जीवन को समर्पित करने वाले डॉक्टर बेन कार्सन की कहानी अपने आप में बेमिसाल है। उनकी अपनी परवरिश, उनकी शिक्षा और शिक्षा के प्रति उनके मन में जागा एकनिष्ठ भाव उनको कितनी गलियों से घुमाता हुआ कहां पहुंचा सका है , इसका एक जीवन्त प्रमाण है उनका अपना जीवन। उनकी आत्मकथा को हिन्दी में प्रस्तुत किया है अर्पणा मक्कड़ ने जो स्वयं एक शिक्षिका हैं। डॉ. बेन कार्सन के जीवन का कोई भी पृष्ठ उलटिये, अपने पेशे के प्रति ईमानदारी, कड़ी मेहनत, समर्पण और ईश्वर पर अटल विश्वास की इबारत साफ पढ़ी जा सकती है । प्रस्तुत है उनकी आत्मकथा 'गिफ्टेड हैंड्स' पर आधारित श्रृंखला की तीसरी और अंतिम कड़ी। ❑ सं.

शाला से विदा होने का समय था। मां के द्वारा हमारे टी.वी. देखने पर लगायी गयी पाबंदी और क्विज शो **कॉलेज बोल** के लिये अपनी कड़ी मेहनत से मैं प्रतिष्ठित परीक्षा-**स्कॉलिस्टिक एप्टीट्यूड टैस्ट** (सेट) में ९० प्रतिशत से अधिक अंक ला पाया था। एक निर्धन, अश्वेत बालक की यह उपलब्धि सभी को हैरत में डाल रही थी। डैट्रायट के विभिन्न स्कूलों के प्रतिनिधि मुझे घेरे खड़े थे। सब ओर मेरी प्रशंसा की गूंज थी और मैं फूला नहीं समा रहा था।

अब कॉलेज का चुनाव करना था। हालांकि देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय मुझे प्रवेश देने के इच्छुक थे किन्तु एक प्रवेश पत्र भरने का शुल्क दस डॉलर था। जितने ज्यादा एडमिशन फॉर्म भरता, उतना अधिक पैसा खर्च होता। अगर मैं उन शिक्षण संस्थानों से अनुरोध करता तो वह यह शुल्क माफ कर देते। किन्तु मां ने आत्म-सम्मान का भाव इतना कूट कूट कर भर दिया था कि मै ऋणी होकर अपने कॉलेज जीवन की शुरुआत नहीं करना चाहता था।

अंतत: मैंने **येल यूनिवर्सिटी** जाने का निश्चय किया। उन दिनों विश्वविद्यालय प्रतिभावान अश्वेत विद्यार्थियों को दाखिला देने के लिये उत्सुक थे। कॉलेज में मै प्रीमेडिकल को मुख्य विषय और साइकॉलोजी को सहायक विषय के तौर पर ले कर खुद को मेडिकल स्कूल के लिये तैयार

करना चाहता था। इसी से डॉक्टर बनने की राह प्रशस्त होती। येल विश्वविद्यालय ने मुझे १० प्रतिशत छात्रवृत्ति देने का निर्णय लिया। इस बढ़िया खबर से मैं प्रसन्न तो था पर हैरान नहीं। मन में अहंकार जड़ें जमा चुका था कि मैं तो सर्वश्रेष्ठ छात्र हूं, मैं तो इसका हकदार हूं ही।

येल के खूबसूरत कैंपस ने मन मोह लिया मैं सातवें आसमान पर था। मन आत्म-विश्वास की दहलीज लांघ कर आत्म-श्लाघा की परिधि में जा चुका था। कुछ ही दिनों में मेरी खुशफहमी दूर हो गयी। **येल** के विद्यार्थी असाधरण तौर पर कुशाग्र थे। उनके सेट अंक मुझसे कहीं अधिक थे। इसके बावजूद मन अब भी उड़ान भर रहा था, धरा पर उतरने को तैयार ही न था। मैं खुद को दिलासा देता था कि खूब मेहनत करूंगा और इन सब को पछाड़ दूंगा।

शीघ्र ही कठोर सच्चाई से रूबरू होना पड़ा। स्कूल में मैं इम्तहान से पहले किताबों को रट लेता था। खूब अच्छे अंक भी ले आता था किन्तु **येल** में प्रोफेसर्स चाहते थे कि हम पहले से पढ़ कर क्लास में आयें और फिर क्लास में विशद चर्चा हो। मैं अपने आपको इस पद्धति में ढाल नहीं पा रहा था और पिछड़ता जा रहा था। खासकर कैमिस्ट्री मेरी समझ से बाहर होती जा रही थी।

पहले सैमिस्टर के इम्तहान आये। मेरे प्राण सूख रहे थे। निराशा लील जाती थी-दूर तक रोशनी की कोई किरण नहीं। कैमिस्ट्री में फेल होने का अर्थ था-डॉक्टर होने के सपनों पर तुषारापात। इसे मेरी अयोग्यता माना जाता और भविष्य के ख्वाब वहीं दम तोड़ देते। अपने आप को उसी असहाय अवस्था में पा रहा था जब पांचवीं कक्षा में फेल होने पर सहपाठियों की फब्तियां मुझे बींध देती थीं। मन क्लांत था और किंकर्त्तव्यविमूढ़ भी। तभी मां की चिर-परिचित आवाज आयी, **'बेटे, तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम औरों से बेहतर कर सकते हो। मुझे तुम पर प्रबल विश्वास है।'** अपने शिक्षकों की मीठी यादें मन में उमड़ आयी, **'बैंजामिन, तुम प्रतिभावान हो। तुम आसमां छू सकते हों।'** बाहर रात्रि का सन्नाटा पसर रहा था। मेरे भीतर भी अंधेरा गहरा रहा था। यह अहसास मुझे दबोचे था कि मैं ऊंचे चढ़ने की बजाय ढलान पर फिसल रहा हूं। अगर मैं डॉक्टर नहीं बन पाया तो ? क्या मैं एक व्यवसायी बनना चाहूंगा ? शिक्षक ? उद्यमी ? कुछ भी ऐसा न था जो डॉक्टर बनने के जरा भी समकक्ष हो। मन ईश्वर से मुखातिब हुआ और प्रार्थना में डूबता गया, **'हे प्रभु मुझे राह दिखाइये। मुझे इस संकट से उबारिये।'** सर्वशक्तिमान सत्ता ने जैसे मुझे थाम लिया। मन शांत होता गया। यद्यपि अभी भी मैं अधरझूल में था पर एक तसल्ली थी कि जो होगा, अच्छा होगा। तभी जहन में रोशनी की नन्हीं किरण कौंधी-**येल विश्वविद्यालय** में यह नियम था कि यदि कोई विद्यार्थी फाइनल परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाये तो उसकी पिछली विफलतायें अनदेखी कर दी जाती हैं। मुझे इस टेस्ट में इतना अच्छा प्रदर्शन तो करना ही होगा कि मैं पास न भी हो सकूं तो सम्मानजनक ढंग से फेल होऊं।

रात के दस बजे थे। मैं थका हुआ था पर आराम की गुंजाइश न थी। भीतर से एक दृढ़ आवाज आयी, **'बेन, तुम्हें जी-तोड़ कोशिश करनी होगी।'** अगले दो घंटे तक मैं कैमिस्ट्री की मोटी किताब के समीकरणों और सूत्रों को समझ कर याद करने में जुटा रहा। इम्तहान में कल कुछ भी हो किन्तु मैं भरसक प्रयत्न करना चाहता था। मैं दत्तचित होकर पढ़ रहा था और अच्छे से महसूस कर रहा था कि कैमिस्ट्री ऐसी मुश्किल न थी। कैसी विडंबना थी कि स्कूल में मेधावी छात्र होने के बावजूद मैं पढ़ने की कला नहीं सीख पाया था। स्कूल में पहले तो मैं मजे करता और फाइनल परीक्षा से थोड़ा पहले सब कुछ घोट लेता। रटने की इस आदत का परिणाम सामने था- शिकार और कोई नहीं, मैं स्वयं था।

रात गहरा गयी। मेरी आंखों के सामने अक्षर धुंधले पड़ने लगे। अब शक्ति क्षीण होती जा रही थी। सोने से पहले मैंने परमपिता को पुकारा, **'हे प्रभु, मुझे क्षमा करें। मैंने न केवल स्वयं को बल्कि आप को भी विफल किया है।'** आत्म-ग्लानि में कब आंख लगी, पता नहीं। नींद में मैंने एक विलक्षण ख्वाब देखा-मैं कैमिस्ट्री हॉल में अकेला बैठा हूं। दरवाजा खुलता है और एक आभामय व्यक्तित्व का प्रवेश होता है। वे बोर्ड पर कैमिस्ट्री के कुछ प्रश्न लिखते हैं और उन्हें हल भी करते हैं। मैं सब कुछ अपनी कॉपी में लिख लेता हूं।

मेरी नींद उचट गयी। झटपट उठा, मुझे अधिकांश प्रश्न याद थे। मैंने तेजी से उनके उत्तर लिखे कि भूल न जाऊं। कुछेक सवालों के उत्तर कैमिस्ट्री बुक से खोज लिये। मनोविज्ञान में मेरी बुद्धि तो रमी थी ही। सोचा-रात को जो मेरा मन व्याकुल था, अवचेतन मन उसी के समाधान में जुटा होगा इसलिये ऐसा ख्वाब आया।

एक खुशनुमा सुबह ने मुस्कुरा कर स्वागत किया। मैं आशंकित मन से परीक्षा देने पहुंचा। पेपर बंटे-प्रश्न हूबहू वही थे जो मेरे ख्वाब में आये एक असाधारण व्यक्तित्व ने बोर्ड पर लिखे थे। मेरा दिल बल्लियों नाच उठा। मैंने तेजी से उत्तर लिखने आरंभ किये। जब पहले पेज पर लिखे सारे सवाल हल हो गये तो पन्ना पलटा। तेजोमय व्यक्तित्व द्वारा की गई मदद उस पन्ने पर भी शब्दश: मौजूद थी। मैं अवाक था किन्तु रुक कर सोचने का समय न था। टेस्ट के अंतिम दौर में कुछ उत्तर भूला भी पर तब तक मेरे फेल होने का खतरा टल चुका था।

'हे, प्रभु, आपने उबार लिया। मैं वायदा करता हूं कि आइंदा ऐसी

आत्मकथा का एक सोपान यह भी...

डॉ. कार्सन अपनी आत्मकथा में बाद में एक दिलचस्प तथ्य का जिक्र करते हैं। पाठक भूले नहीं होंगे कि उन्होंने अपने प्रिय टी.वी. क्विज शो में भाग लेने के बहुआयामी महारत हासिल की। वे कला, विज्ञान और संगीत सभी विधाओं में गहरे उतरे। संयोग ऐसा कि कॉलेज में उनके दाखिले के कुछ माह बाद ही उस शो का प्रसारण बंद कर दिया गया। बेन कार्सन उस स्वर्णिम अवसर से वंचित हो गये। उन्हें मलाल रहा कि उस शानदार कार्यक्रम की तैयारी में खर्च हुआ समय और ऊर्जा किसी काम न आयी। कॉलेज में कुछ साल बीत गये। वे अब डॉक्टर बन चुके थे और इंटर्नशिप प्रतिष्ठित जॉन हॉपकिंस हास्पिटल से करना चाहते थे। वे नि:संदेह मेधावी छात्र थे किन्तु इस अस्पताल की कसौटी कड़ी थी। इच्छुक १२५ विद्यार्थियों में से मात्र २ ही प्रति वर्ष चुने जाते थे।

इंटरव्यू आरंभ हुआ। डॉ. कार्सन आत्म-विश्वास से उत्तर दे रहे थे। प्रश्नों ने चिकित्सा की राह छोड़ बेन की रुचियों को टटोला। बातचीत हाल ही में हुए एक संगीत कांसर्ट पर केन्द्रित हो गयी। इंटरव्यू ले रहे वरिष्ठ डॉक्टर एक अश्वेत युवक की क्लासिकल म्यूजिक में गहरी पैठ पर हैरान थे। लगभग एक घंटे तक उन दोनों में विभिन्न संगीतज्ञों और उनकी संगीत शैलियों पर चर्चा होती रही। इंटरव्यू समाप्त हो जाने पर बेन कार्सन को अटपटा भी लगा कि शास्त्रीय संगीत पर इतनी लंबी चर्चा। खैर, कुछ ही दिनों में खबर आ गयी कि चयनित दो विद्यार्थियों में से एक हैं। वे गौरवान्वित थे।

गांठ के धन की तरह उनका ज्ञान उनके साथ रहा। बेहद कड़े मुकाबले में उस परिष्कृत नॉलेज ने ही उन्हें अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया।

कोताही न करूंगा।' मैं अभिभूत था... एक घंटे तक कैम्पस में प्रफुल्लित भाव से फुदकता रहा। स्वीकारने की कोशिश करता रहा कि वह कैसा अद्‌भुत ख्वाब था ? वह आभा मंडल किनका था ? सच कहूं तो उस विलक्षण ख्वाब के समक्ष मनोविज्ञान की मेरी समझ बिलकुल बौनी हो गयी। बस एक ही उत्तर था- इस ब्रह्मांड के नियामक, आकाश-गंगाओं के सर्जक एक अश्वेत किशोर के स्वप्न में उतर आये कि डॉक्टर बनने की उसकी चाह पूरी कर सकें। बाइबल में भी ऐसे कुछ प्रसंग आते हैं जब प्रभु अपने आराधकों को स्पष्ट उत्तर देते हैं। बीसवीं शताब्दी में प्रभु ने मुझ पर ऐसी महत्ती कृपा की। मेरी गलतियों को उन्होंने क्षमा किया और हताशा की गर्त से मुझे बाहर खींच लाये। हां, भगवान मुझे वाकई डॉक्टर ही बनाना चाहता हैं। अब मैं दृढ़प्रतिज्ञ था कि प्रभु से ऐसी अपेक्षा फिर न करूंगा। मैं पढ़ने की कला सीखूंगा। **येल** के चार वर्षों में मेरे अंकों में कुछ उतार-चढ़ाव जरूर आये किन्तु मैंने भरपूर तैयारी न की हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। मैं लगन से पढ़ने लगा-केवल सतही तौर पर नहीं बल्कि कब, क्या, कैसे, क्यों नहीं आदि प्रश्नों के जवाब खोजकर ही दम लेता। कैमिस्ट्री के फाइनल ग्रेड में मैंने १०० में से ९७ अंक हासिल किये। मैं एक बार फिर क्लास के सितारों में था।

कॉलेज के दिनों में मैंने तरह-तरह के समर जॉब किये। **येल** में एक साल पढ़ लेने के बाद मुझे हाइवे पर कूड़ा उठाने वाली टीम को सुपरवाइज करने की नौकरी मिली। यह काम कर रहे किशोर निर्धन और मेहनत से जी चुराने वाले थे। वे बहाने बनाते, बहुत धीरे-धीरे काम करते। पांच-छह लोगों की एक टीम दिन भर में अगर १२ प्लास्टिक बैग भी भर लेती तो संतुष्ट हो जाती। मैं भांप गया था कि इतना काम तो उन नौजवानों द्वारा घंटे भर में ही किया जा सकता है। मैंने

अपने टीम को कुछ इस तरह बांधा कि वह एक दिन में १०० से २०० बैग्स उठाती और हाइवे का खासा बड़ा हिस्सा हम दिन भर में साफ कर लेते। मुझ से ऑफिस में सब यह रहस्य जानना चाहते और मैं मुस्कुरा कर टाल जाता। दरअसल मैं नहीं चाहता था कि मेरी कार्यशैली जान लेने के बाद मुझे नियमों में अटकाने की कोशिश की जाये।

हमारे समूहों को सुबह ७.३० से शाम ४.३० तक हाइवे पर काम करना होता था। सूरज जल्दी ही सिर पर चढ़ आता था और उन किशोरों के लिये तीखी धूप में कचरा उठाना खासा मुश्किल होता था। मैंने अपनी टीम को सुबह ६ बजे काम पर आने के लिये कहा। किशोरों ने काफी हील-हुज्जत की किन्तु मैं दृढ़ रहा, 'जैसे ही तुम सब मिलकर १५० बैग्स कूड़ा इकट्ठा कर लो, तुम लोग घर जा सकते हो। मैं तुम्हें दिन भर की तनख्वाह दूंगा किन्तु शर्त वही है-तुम्हें १५० बैग्स तो भरने ही होंगे।' टीम की आंखों में चमक आ गयी। उन्हें अब मजबूरन हाइवे पर समय नहीं गुजारना था, सूरज की तपिश भी नहीं सहनी थी। वे खुद को अन्य टीमों से बेहतर सिद्ध कर सकते थे। अब उनके लिये कचरा उठाना हेय नहीं था। वे रोमांचक मुकाबले में उतर चुके थे। वे तड़के ६ बजे हाइवे पर डट जाते, तत्परता से १५० बैग्स भर कर ऑफिस पहुंचते। उस समय बाकी, टीमें सुबह की अलसायी शुरुआत कर रही होतीं और वे अपना काम समाप्त कर, तनख्वाह लेकर, प्रफुल्लित घरों को दौड़ पड़ते ।

मैंने सीखा कि नियमों की कठोरता हमेशा बरकरार रखी जाये, ऐसा जरूरी नहीं। अगर रचनात्मक तरीके अपनाकर हम बेहतर परिणाम पा सकते हैं तो क्यों नहीं ? समस्याओं को ताजगी भरे दृष्टिकोण का ही तो इंतजार है। फिर चाहे रचनात्मक पहल श्वेत करे या अश्वेत। मां भी मुझ से कहा करतीं, **'बेन, तुम्हारे परिश्रम और सूझ-बूझ से ही तुम्हारी पहचाने बनेगी। त्वचा का रंग गौण है। पूर्वाग्रही लोग भी जीवन में बैस्ट ही चाहते हैं। तुम श्रेष्ठ सेवायें दोगे तो वे तुम्हें कभी नकार नहीं पायेंगे।'** ऐसा वाकई हुआ भी। मेरे न्यूरोसर्जन बन जाने के बाद जब कभी श्वेत मरीज वरिष्ठ डॉक्टर दो टूक शब्दों में उनसे कहते, 'आपको डॉ. बैंजामिन कार्सन ही देखेंगे। अगर यह आपको स्वीकार्य नहीं तो सामने दरवाजा है। आप बाहर तशरीफ ले जा सकते हैं।'

समर जॉब्स में अपने कार्य-कौशल का परिचय देने के बावजूद पैसों की तंगी मुझे कॉलेज में सालती रही। एक दफा इतने पैसे भी न बचे कि मैं बस में चर्च तक जा सकूं। कहीं से किसी मदद या आमदनी की आशा न थी। डाक टिकट और टूथपेस्ट जैसी छोटी-छोटी चीजें खरीद पाना भी मेरे बूते के बाहर था। मैंने कातर स्वर में पुकारा, 'प्रभु, मेरी मदद करें। मैं चर्च जाने के लिये व्यग्र हूं।' मन प्रार्थना में डूबा रहा और कदम कहां को बढ़ चले, कुछ सुध नहीं। अचानक दृष्टि उठी तो पाया कि मैं येल के पुराने कैम्पस में बने चर्च के सामने खड़ा हूं। उस ओर थोड़ी दूर गया ही था कि जमीन पर दस डॉलर का नोट मुड़ा-तुड़ा मिला। पलकें भीग गईं। ईश्वर की उपस्थिति का अहसास सजीव हो उठा।

कुछ महीनों बाद फिर वही हालात-मेरे पास एक पाई भी नहीं। उस दिन एक मुश्किल और भी आ खड़ी हुई थी - दो दिन पहले हम सबने जो जो सायकॉलजी टेस्ट दिया था, उसकी कॉपियां गलती से जल गयी थीं। नोटिस लगा कि सभी विद्यार्थियों को वह टेस्ट दुबारा देना होगा। सो १५० सहपाठियों के साथ मैंने इम्तहान के लिये कदम बढ़ाये। पेपर जैसे ही बंटा, क्लास में नि:स्तब्धता छा गयी। पर्चा इतना कठिन था कि एक असाधारण मनोवैज्ञानिक को भी उसे हल करने में पसीने आ जाते। मेरे सहपाठियों ने वॉक आउट करना तय किया।

मैं सिर झुकाये प्रश्नों के उत्तर लिखने की कोशिश करता रहा। एक-एक कर बाहर जा रहे विद्यार्थियों की पदचाप मुझसे पूछती, 'तुम बाहर क्यों नहीं जा रहे, बेन ?' मैं अपने शिक्षकों को यह झूठ कैसे बोल सकता था कि मैंने नोटिस नहीं पढ़ा। सो जूझता रहा, ईश्वर को पुकारता रहा कि मुझे सुबुद्धि दें। अचानक क्लास रूम का दरवाजा जोर से खुला और मेरी विचार-प्रक्रिया भंग हो गई। मेरी दृष्टि प्रोफेसर से टकराई। तभी अहसास हुआ कि मैं हॉल में अकेला बचा था। वे उत्साह से मेरे पास आईं। उनके साथ 'द येल डेली न्यूज' का फोटोग्राफर भी था जिसने लपक कर मेरा फोटो ले लिया। मैंने अचरज भरी दृष्टि से अपनी शिक्षिका की ओर देखा। वे मुस्कुराई, प्यार से मुझे दस डॉलर का नोट थमाया और बोलीं, 'यह एक नाटक था। हम देखना चाहते थे कि क्लास में सबसे ईमानदार विद्यार्थी कौन है ?' उनके चेहरे पर खुशी साफ झलक रही थी, 'और वे तुम हो।'❑

- समाप्त -

अपर्णा शिक्षक हैं और शिक्षाविद् भी जयपुर के एक इंजीनियरिंग कॉलेज में रीडर हैं। रचनात्मक शिक्षण में और प्रयोगधर्मी संवाद में गहरी रुचि रखती हैं। अपर्णा कुदरत के बहुत करीब रहना पसंद करती है। फूलों और तितलियों के संग।

सम्पर्क - १२४, आनन्द नगर
मिलन होटल के पास, सिरसी रोड
जयपुर- ३०२०१२

चुनी हुई कविताएं

❑
हेमराज भट्ट

उसने हां कहा

मुझे खुशी हुई
उसने हां कहा
मुझे खुशी हुई,
उसने कई दिनों से ना नहीं कहा

नहीं हो सकेगा
टूट चुकी हूं मैं
अब संभलना मुश्किल है,
कुछ भी नहीं कर पाउंगी मैं
बहुत कठिन है सब
भाग्य में नहीं है मेरे
जाने और कितने
ये टूटन भरे वाक्य
जबान पर चढ़ गये थे उसकी
ना, नहीं मुश्किल, कभी नहीं
हो गये थे उसके तकिया कलाम

आज जब कहा उसने
कुछ सीखना चाहती हूं
कुछ पढ़ना चाहती हूं
कुछ गुनगुनाना चाहती हूं
और चाहती हूं लिखना एक गीत
तो मुझे लगा
आज मैं कहीं, शामिल हो गया हूं
उसकी जिन्दगी में ! ❑

कुछ लोग

कुछ लोग छोड़ नहीं पाते
अपने अहंकार
और बदले में छोड़ देते हैं
ढेर सारा प्यार

कुछ लोग छोड़ नहीं पाते
टहनियों को
और बदले में छोड़ देते हैं
एक लम्बी उड़ान

कुछ लोग नहीं छोड़ पाते
कुंठा और द्वुविधाओं को
और बदले में छोड़ देते हैं
विश्वास भरा जीवन

स्व. हेमराज भट्ट प्राथमिक विद्यालय भड़कोट, जनपद-उत्तरकाशी में सहायक अध्याप के पद पर कार्यरत थे। उनकी छवि एक कर्मठ अध्यापक के रूप में हो रही है। अपने सूक्ष्म कार्यकाल में बच्चों की शिक्षा के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर कई रचनात्मक प्रयोग किये। ❑ सं.
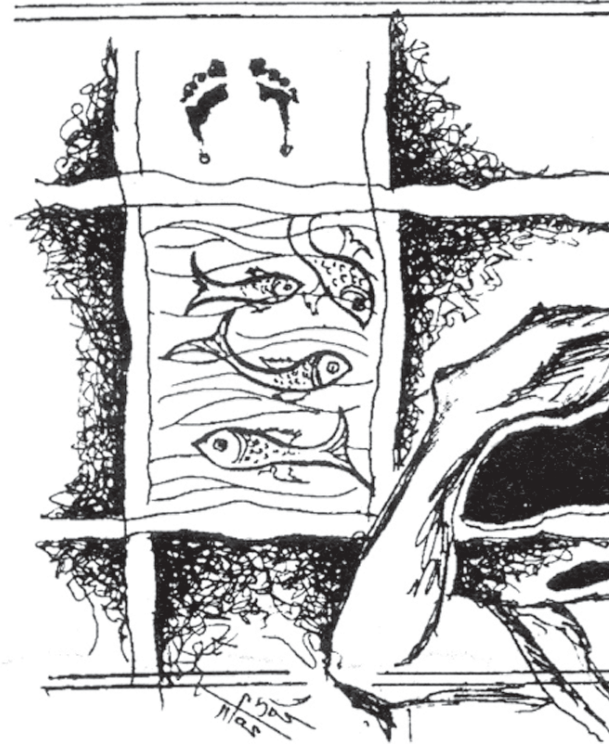
कुछ लोग नहीं छोड़ पाते
अपनी शंकाओं को
और बदले में छोड़ देते हैं
निश्चिंत चैन भरा जीवन। ❑

मछलियां

मछलियां तैरती हैं
मछलियां बहती नहीं हैं
मछलियां तैरती हैं।

मछलियां बहती नहीं है
मछलियां तैरती हैं।
मछलियां उद्‌गम की ओर तैरती हैं।

मछलियां बहती नहीं है
मछलियां तैरती हैं।
मछलियां प्रवाह के विपरीत तैरती हैं।

आदमी तैरता है
आदमी तैरता नहीं है,
आदमी बहता है । ❑

मुझे देखकर वे क्यों उड़ जाते हैं ?

मेरे घर के सामने
डेंकण का एक पेड़ है
उस पेड़ पर घिंडुड़ी का घौंसला
घोंसले में तीन (बच्चे) चूजे।

चूजे मुझे देखकर
सर उठा लेते थे
चूजे मुझे देखकर
मुंह खोल लेते थे
घौंसले से बार-बार मुंह निकालकर
मेरे साथ कितनी ही बार
आंख मिचौली खेलते थे।

अब हो गये हैं बड़े
फुदकने लगे हैं यहां-वहां
फिर भी कई बार वे
देख लेते हैं मुझे टकटकी लगाकर

पर जब से बदल गये हैं
वे चिड़िया में
अब वे दूर-दूर तक
घूम आते हैं

हैरान हूं मैं
मेरे पास जाने पर
वे क्यों उड़ जाते हैं ? ❑

एक **अध्यापक की डायरी** के
कुछ पन्ने से साभार
प्रकाशक : अजीम प्रेमजी फाउंडेशन

लेख

मेरे अनुभव की गठरी से

❑

डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

एक शिक्षक अपने अनुभव की गठरी में क्या रखता है ? कितना स्वाध्याय ? कितनी साधना ? कितना वात्सल्य ? कैसी जीवनदृष्टि और कैसी विद्यार्थी-वत्सल शिक्षा ? शिक्षक की गठरी में सब कुछ होता है। कुछ प्रयोग, कुछ प्रेम, थोड़ी सी डांट-फटकार और वात्सल्य भरा ऐसा गुस्सा जो पग-पग पर डपटता रहे और कच्ची माटी को थप-थपाता रहे। एक अलग ही जिन्दगी होती है शिक्षक की। पूरा जीवन शिक्षा की एक प्रयोगशाला होता है। बहुत बार अहंकार भी उसे आ घेरता है क्योंकि उसके पढ़ाये छात्र सातवां आसमान तक छू लेते हैं। फिर भी शिक्षक की विनम्रता बेमिसाल होती है। ऐसी सब बातें एक अध्यापक की जिन्दगी से उधार लेकर हम यहां परोस रहे हैं। पाठकों के लिये। ❑ सं.

मैं जो कुछ भी लिखने जा रहा हूं उसको लेकर मैं बड़े पशोपेश में हूं। मुझे डर है कि कहीं यह सब कुछ आत्मवृत्त या आत्मस्तवन बनकर न रह जाये। पर अपनी बात को कहते कहते आत्मवृत्त से बचा भी कैसा जा सकता है। जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो मेरे जेहन में ढेर सारी बातें स्मृतियों के रूप में कौंध जाती हैं। इन्हीं स्मृतियों और अनुभवों को मैं सभी के साथ बांटना चाहता हूं। मैंने अपना जीवन शिक्षक के रूप में लगभग आधी सदी पूर्व प्रारंभ किया था। शुरुआत एक स्कूली शिक्षक के रूप में हुई। बाद में एक कॉलेज शिक्षक बना। कालान्तर में महाविद्यालयों में प्राचार्य भी रहा। इस प्रकार से मेरे अनुभव दोनों शिक्षा-स्तरों स्कूली और उच्च शिक्षा से जुड़े हुए हैं। अगर इसे कोई गर्वोक्ति न समझा जाये तो कहना चाहूंगा कि मैंने शिक्षक बनना किसी विकल्पहीनता की स्थिति में स्वीकार नहीं किया था।

छठे दशक के प्रारंभिक वर्ष में मुझे गृहमंत्रालय के सेन्ट्रल इन्टैलीजेंस ब्यूरो के लिए चयनित कर सेन्ट्रल पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज माउन्ट आबू में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था। पर एक माह के प्रशिक्षण के बाद, छह महीनों के प्रशिक्षण को अधूरा छोड़कर मैं शिक्षक बन गया था। मेरा उस नौकरी में मन नहीं लगा क्योंकि मुझे भीतर से लग रहा था कि एक शिक्षक के रूप में मुझे अधिक संतोष मिल सकेगा।

मैं प्रारंभ से ही यह महसूस करता रहा हूं कि एक शिक्षक का कार्य बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम है। यदि कोई शिक्षक विपथ होकर अपनी जिम्मेदारी न निभा पाये तो इससे बड़ी कोई त्रासदी नहीं हो। भाव मेरे मन में सदैव उपस्थित रहा है और मैंने मनसा-वाचा-कर्मणा कोशिश की है कि मैं अपने छात्रों, उनके अभिभावकों, समाज और राष्ट्र की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं और आशाओं पर यथासंभव खरा उतरूं। 'स्वधर्मे निधनं श्रेय:' में मेरा सदा विश्वास रहा है। यह सब कहने का मेरा अभिप्राय एक समर्पित शिक्षक के रूप में अपनी बात पूरी ईमानदारी से कहने का प्रयास है। मुझे यह कहते हुए परम संतोष है कि मेरी शिक्षा-यात्रा (एक शिक्षक के रूप में) हर दृष्टि से सफल एवं सार्थक रही है। शिक्षक के रूप में मुझे जिस उत्कृष्टता और समर्पण-भाव की तलाश थी वह मुझे भरपूर मिला। संतोष, सम्मान-दोनों ही मिले। अपने छात्र-छात्राओं के सफल शिक्षा-क्रम, उनकी जीवनवृत्तियां तथा उनके द्वारा शिक्षा के दौरान प्राप्त किये संस्कार, जिनमें मेरी यत्किंचित भूमिका रही- आज अपनी सेवानिवृत्ति के ग्यारह वर्षों बाद जब मैं अपने शिक्षकीय जीवन का मूल्यांकन करता हूं तो मुझे एक शिक्षक होने का कोई अफसोस नहीं है।

कहना न होगा कि शिक्षा की प्रक्रिया कक्षा में घटित होती है और इस प्रक्रिया का विस्तार छात्र के अनेक जीवनानुभवों तक होता है। इस प्रक्रिया में न केवल कक्षा में दी जाने वाली पाठ्यपुस्तकीय शिक्षा ही महत्त्वपूर्ण है अपितु सभी सामाजिक घटकों से छात्र का साक्षात्कार भी उतना ही महत्वूर्ण है। कक्षा के भीतर और कक्षा के बाहर दोनों जगह शिक्षा की प्रक्रिया सतत चलती रहती है या चलती रहनी चाहिए। आज की शिक्षा पद्धति में ऐसा हो रहा है, यह कहना बहुत कठिन है। बच्चे में भावी मनुष्य की संभावनाएं सन्निहित होती हैं।

बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता और संस्कारशीलता पर बच्चे का भावी विकास निर्भर है। इसमें शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक, समाज, शासन-सभी महत्त्वपूर्ण घटकों का सोद्देश्य सहयोग जरूरी है। बच्चों, युवकों, युवतियों की अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, उद्दण्डता पर दिनरात टीका टिप्पणी करते रहना आसान है पर क्या यह जरूरी नहीं है कि शिक्षा प्रक्रिया के ये घटक अपने दायित्व को पूर्ण रूप से निभा पा रहें या नहीं, यह सोचें और आत्म निरीक्षण करके बदहाल शिक्षा पद्धति को सही रास्ते पर लायें।

एक शिक्षक के रूप में मैंने यह महसूस किया कि जब तक एक शिक्षक अपने छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास का भाव उत्पन्न करने में कामयाब नहीं होता तब तक सही अर्थों में वह छात्रों द्वारा सम्मान या आदर का अधिकारी नहीं होता। यह विश्वास तभी पैदा होता है जब शिक्षक अपने छात्रों के साथ एक भावात्मक रिश्ता कायम करे। उनके कल्याण और सफल जीवन में उसकी गहरी रुचि हो। छात्रों के जीवन से उसका गहरा जुड़ाव और सरोकार हो। जब एक शिक्षक छात्रों को वात्सल्य और स्नेह देगा तो निश्चित रूप से उसे छात्रों का आदर भाव प्राप्त होगा। ऐसे शिक्षक के सामने छात्र अशिष्टता कर ही नहीं सकता। जब छात्र अपने शिक्षक के प्रति अटूट विश्वास का भाव मन में रखेगा, तो वह अनुशासन क्यों तोड़ेगा ? यह विश्वास तब आता है जब कक्षा में शिक्षक अपने विषय का पूर्ण पंडित हो, तथा छात्रों को अपने आचार-विचार और व्यवहार से भावाभिभूत कर सके। वह स्वयं भीतर से और बाहर से एक सा हो। वह स्वयं शिष्ट, मधुरभाषी, स्नेहिल, अनुशासित और सुसंस्कारित हो। उसका जीवन एक खुली किताब हो। ऐसे शिक्षक के छात्र निस्संदेह आदर्श छात्र बनेंगे।

जब तक एक शिक्षक अपने छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास का भाव उत्पन्न करने में कामयाब नहीं होता तब तक सही अर्थों में वह छात्रों द्वारा सम्मान या आदर का अधिकारी नहीं होता। यह विश्वास तभी पैदा होता है जब शिक्षक अपने छात्रों के साथ एक भावात्मक रिश्ता कायम करे। उनके कल्याण और सफल जीवन में उसकी गहरी रुचि हो। छात्रों के जीवन से उसका गहरा जुड़ाव और सरोकार हो। जब एक शिक्षक छात्रों को वात्सल्य और स्नेह देगा तो निश्चित रूप से उसे छात्रों का आदर भाव प्राप्त होगा। ऐसे शिक्षक के सामने छात्र अशिष्टता कर ही नहीं सकता। जब छात्र अपने शिक्षक के प्रति अटूट विश्वास का भाव मन में रखेगा, तो वह अनुशासन क्यों तोड़ेगा ? यह विश्वास तब आता है जब कक्षा में शिक्षक स्वयं शिष्ट, मधुरभाषी, स्नेहिल, अनुशासित और सुसंस्कारित हो। उसका जीवन एक खुली किताब हो। ऐसे शिक्षक के छात्र निस्संदेह आदर्श छात्र बनेंगे।

मैंने स्वयं ऐसा ही रास्ता अपनाने की सदैव कोशिश की। यह कहते हुए मुझे परम आत्मिक संतोष है कि मेरे किसी छात्र या छात्रा ने मेरे सामने कभी भी अशिष्टता नहीं की। मेरे प्रति सदैव उनका एक पिता के तुल्य सम्मान रहा। मेरे अनेक छात्र-छात्राएं अपनी नौकरियों से सेवानिवृत्त हो चुके हैं, पर आज भी उनकी आंखों में जो आदर और सम्मान मुझे दिखाई देता है उससे मैं अभिभूत हो जाता हूं। मुझे लगता है कि मुझे सहस्त कुबेरों का धन प्राप्त हो गया है। एक बात बहुत काबिले गौर है कि शिक्षक एक बेदाग आइने की तरह होता है, जिसमें प्रत्येक छात्र अपना अक्स देखता है। यदि दर्पण स्वयं दागदार या खंडित हो तो छात्र का अक्स भी वैसा ही होगा।

यदि हम यह अपेक्षा करें कि बच्चे व्यसन मुक्त हों, सत्यनिष्ठ हों, मानवीय गुणों से युक्त हों, मैत्री, करुणा, मुदिता जैसे गुणों से पूर्ण हों तो शिक्षकों अभिभावकों को, राजनेताओं और समाज के अन्य घटकों को पहले स्वयं वैसा बनना पड़ेगा। मैंने शिक्षक के रूप में, एक व्यसनमुक्त शिक्षक बनकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया। लोगों को ये बातें नितांत आदर्शोन्मुख लग सकती हैं पर उनका कोई विकल्प संभव नहीं। मुझे

उन शिक्षकों या समाज के अन्य लोगों से कोई सहानुभूति नहीं है जो दिनरात शिक्षा की गिरावट और छात्रों की अनुशासनहीनता का रोना रोते रहते हैं। कभी आत्म विवेचन करके अपनी भूमिका का स्व-परीक्षण नहीं करते।

शिक्षक का कार्य एक अग्निपथ है, उस पर तो उसे ही चलना है। समाज का अन्य कोई वर्ग इस पर नहीं चल सकता। समाज ने उसे ही यह कार्य सौंपा है। उसे अपने कर्त्तव्य निर्वाह में कोई कोताही नहीं बरतनी है क्योंकि व्यष्टि और समष्टि के निर्माण में उसकी महत्ती भूमिका है। माना कि आज प्रतिकूलताएं बहुत हैं पर प्रतिकूलताएं कब नहीं थीं ? पहले भी शिक्षक अग्निपथ पर चले हैं, इतिहास इसका साक्षी है। माना कि समाज में जो कुछ बुरा हो रहा है, उसके ठीक होने में समय लगेगा, पर शिक्षक क्यों इंतजार करे कि पहले सब ठीक हो जाये तो वह अपना दायित्व ठीक से निभायेगा। शिक्षक को किन्तु, परन्तु न सोचकर अपने प्रदत्त कार्य में पूर्ण मनोयोग से लगकर आने वाली पीढ़ी और वर्तमान पीढ़ी को सुसंस्कारित करके उसे विश्वग्राम बनती दुनिया में अपना मुकाम हासिल करने के काबिल बनाना चाहिए। ये सब बातें मैं उसी आस्था और विश्वास के बल पर कह रहा हूं जो मैंने अपने दीर्घ शिक्षकीय जीवन में अर्जित की है। पर उपदेश मेरे स्वभाव में नहीं है, स्वयं पर प्रयोग करके शिक्षा के मर्म तक पहुंचना मेरी सतत साधना का अंग रहा है। इसे मेरे **'शिक्षा के साथ प्रयोग'** भी का जा सकता है। ❑

७-च-२, जवाहर नगर, जयपुर
मोबाईल नं.-९४१४६२९३७६
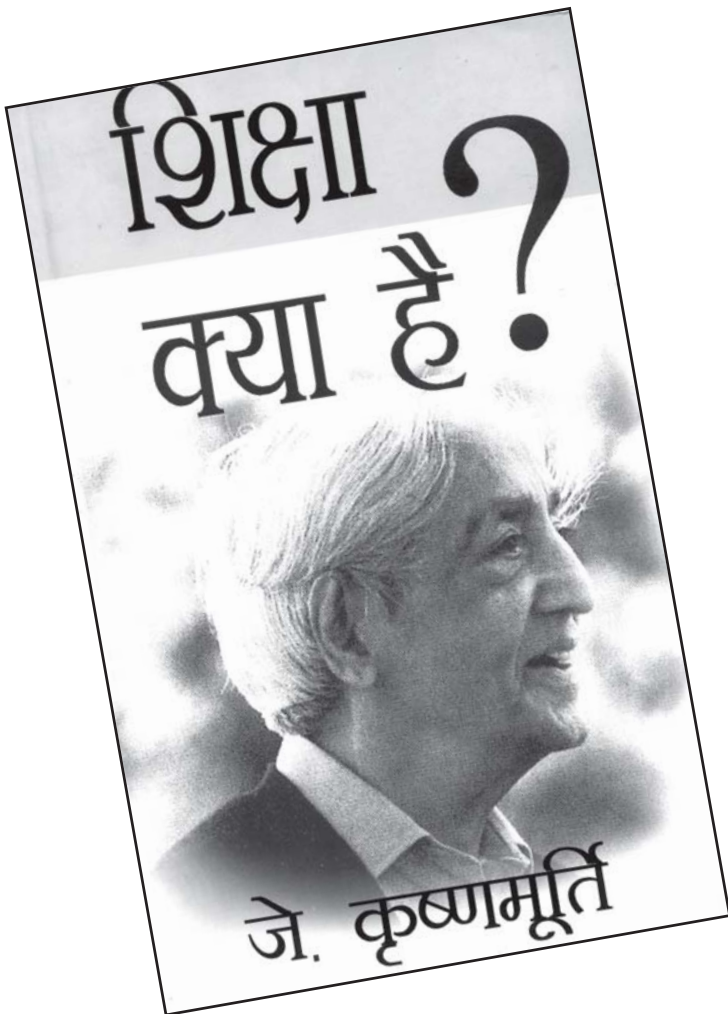
क्या आपने यह पुस्तक पढ़ी है ?

पुस्तक **राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-११०००६** से छपी है। २००६ में छपे संस्करण की कीमत १७५/-रुपये मात्र थी। जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि **जिद्दू कृष्णमूर्ति** को पढ़ने के परम् सुख को प्राप्त करना है। यदि अब तक इस सुख से वंचित हैं तो अब इसे अवश्य पा लें। इसे पुस्तक का विज्ञापन न समझें हमारा निवेदन मात्र है यह । ❑ सं.

लेख

कक्षा में सिनेमा के गाने

❑
डॉ. सरस लक्ष्मी

एक पुरानी और बड़ी अजब मान्यता थी कि सिनेमा के गाने गाने वाला छात्र आवारा होता है। आज जब मुड़ कर देखते हैं तो पता चलता है कि यह मान्यता कितनी थोथी और निराधार थी। हिन्दुस्तानी फिल्मों ने अपने गानों में जितनी भावनाएं, जितना प्रेम और जितनी करुणा पिरोयी है उसका पूरे विश्व में कोई सानी नहीं है। यह भी एक बड़ा तथ्य है कि भारतीय फिल्मों के गानों का रचनात्मक स्तर बहुत ऊंचा है और वहां हर फिल्म अपने गीतों में एक नया साहित्य-संसार रचती दीखती है। वहां सामाजिक सरोकार भी हैं, वहां कल की चिन्ता भी है, वहां अन्याय के खिलाफ आवाज भी है और वहां यह भी सुनायी देता है 'सजन रे झूठ मत बोलो...'। ऐसी झंकृत कर देने वाली सच्चाई से प्रेरित होकर डॉ. सरसलक्ष्मी ने कक्षा में एक प्रयोग किया कि वे गानों के सहारे साहित्यिक संवेदनाएं जगायेंगी। छात्रों को सच्चे रसास्वादन का अनुभव करायेंगी और कवियों और शायरों के साथ खुले आकाश में ऊंची उड़ान भरना सिखायेंगी। डॉ. सरसलक्ष्मी का प्रयोग बहुत सफल रहा मगर अपने प्रयोग पर उन्होंने अपनी विनम्रता के कारण बहुत छोटा सा आलेख लिखा है - अनौपचारिका के पाठकों के लिये। ❑ सं.

साहित्य और जीवन का, साहित्य और समाज का अटूट संबंध है। समय की अविच्छिन्न धारा में बहते हुए जीवन और सामाजिक परिदृश्य नामालूम तरीके से अनवरत परिवर्तित होते रहते हैं। एक लम्बे समयान्तराल में विद्यार्थियों की बदलती समझ, मनोदशा और जीवन शैली की पृष्ठ-भूमि में क्रियारत फिल्मी प्रभाव आज हर किसी के आगे स्पष्ट उजागर है।

समूची शिक्षा के प्रति बढ़ती अरुचि, आधुनिक युग की फैशन और इंटरनेट पर सहज उपलब्ध अधकचरे ज्ञान ने शिक्षकों, बुजुर्गों के अनुभवों और किसी भी तरह की परम्परा के महत्त्व की जरूरत को पूरी तरह मिटा डाला है। हर विद्यार्थी स्वयं ही नियंता बन बैठा है। विद्यार्थी ही क्यों समाज के प्रत्येक क्षेत्र में यही देखने में आ रहा है।

ऐसी स्थिति में उनको साहित्य का वास्तविक रसास्वादन करवा पाना और साहित्य का महत्त्व समझा पाना दुष्कर हो गया है। चारों ओर से संकट में घिरी शिक्षा की वर्तमान स्थिति को सुधारने संवारने का कोई मौलिक और नवीन पथ हम सबको खोजना ही होगा। कक्षा में सिर्फ पुस्तक पढ़ा देना-निर्धारित पाठ्यक्रम का औपचारिक शिक्षण करवा देना, कार्य के अधूरे रह जाने का बोध करवाता है। मन मस्तिष्क से सक्रिय कल्पनाशील और जीवंत विद्यार्थियों के समक्ष एक ऐसा ज्ञान प्रस्तुत कर देना जिसे वे सजावटी गुलदस्ते सा निहार कर, रट कर परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही छिटक दें और जीवन को उससे सर्वथा अलग समझ कर आगे बढ़ जाएं- एक निरर्थक श्रम बन कर रह जाता है।

बेहतर होगा कि जीवन और समाज के जिस पहलू में विद्यार्थियों का मन रम रहा है वहीं से अध्यापन की शुरुआत की जाए। इसी विचार से प्रेरित हो मैंने एक प्रयोग किया। पुस्तक को एक बार के लिये

दरकिनार कर फिल्म जगत के उत्कृष्ट साहित्य का परिचय विद्यार्थियों को करवाया फिल्मी गीतों का वर्गीकरण कर उनमें निहित काव्य सौंदर्य के साथ-साथ जीवन के विविध पक्षों का संवेदनशील और मार्मिक और संवेदनशील फिल्म कथाओं के माध्यम से उनकी सुप्त संवेदनाओं को झंकृत करने का प्रयास किया। कुछ फिल्मी गीतों का साहित्यिक विश्लेषण भी किया। इस बात का अनुभव कर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि पाठ्यपुस्तक पढ़ते समय कक्षा में अरूचिपूर्वक बैठने वाले विद्यार्थियों की सृजनात्मकता और संवेदनशीलता इस प्रकार के शिक्षण में कहीं ज्यादा मिली। एक ओर यह नयापन दूसरी ओर पंत, निराला और प्रेमचन्द जैसे अनेक साहित्यकारों का फिल्म जगत से जुड़ना फिल्म और साहित्य के संबंधों पर पुख्ता मोहर की तरह प्रतीत होता है ।

फिल्म और फिल्मी गीतों के जरिये विद्यार्थियों की साहित्यिक समझ तक पहुंचने की इस प्रक्रिया में जो एक बड़ा लाभ सामने आया वह यह था कि शिक्षक और विद्यार्थी के सम्बन्धों में आत्मीयता की बढ़ोतरी हो गयी।

विद्यार्थियों का शिक्षक के प्रति विश्वास, लगाव और आदर बढ़ गया। परिणामस्वरूप जिन्हें वे अरुचि और बोझ की तरह देखा करते थे उन्हीं साहित्यिक कृतियों को जानने समझने के लिये वे उत्सुक और आतुर होने लगे।

विद्यार्थी, पुस्तक और शिक्षक के मध्य एक लंबा अंतराल ही आज की समस्या नहीं है, समाज में राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक मूल्यों के पतन में लुप्त हो रही मानवीयता के चलते सब कुछ बेमानी होता जा रहा है। ऐसे में एक सच्चा शिक्षक लाचारी और बेबसी से पराजय स्वीकार कर ले या अथाह आत्म विश्वास ले कर एक छोटा सा ठोस कदम इस विकराल समस्या के समाधान हेतु उठाए।

सिने-गीतों के माध्यम से साहित्यिक समझ विकसित करने का यह प्रयोग मेरा ऐसा प्रयास था जिसकी सफलता ने न सिर्फ मेरे भीतर की शिक्षिका को आत्मसंतुष्टि दी है वरन् विद्यार्थियों के शैक्षिक उन्नयन की संभावनाओं को भी प्रबल किया है।

जीवन कहीं भी पल्लवित हो सकता है, संवेदनाएं कहीं भी पनप सकती है, साहित्य की सर्जना कहीं भी हो सकती है। हर युग, हर देश और इतिहास इसके साक्षी हैं। तो फिर, साहित्य शिक्षण को पुस्तक, कक्षा, पाठ्यक्रम और समयावधि के सींखचों से बाहर क्यों नहीं किया जा सकता ?

साहित्य के अनिवर्चनीय रसास्वादन के लिये विद्यार्थियों को योग्य बनाने के महत्ती दायित्व का निर्वहन साहित्य के शिक्षक को करना है, तो उसे नियमों की भेड़ चाल से ऊपर उठ कर विद्यार्थियों को ग्राह्यता के स्तर पर जाकर संवेदनाओं और समझ को जगाना होगा। अपने मौलिक तरीकों से। सिने गीत एक माध्यम है।

ऐसे अनेक माध्यम हो सकते हैं जो तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद शिक्षा को एक खुशनुमा विकास का जरिया बना सकते हैं। जहां चाह वहां राह।❑

ए-७४, वैशाली नगर, जयपुर

क्या आपने यह पुस्तक पढ़ी है ?

जूलिया वेबर गॉर्डन एक अध्यापिका थी। अध्यापन उनके लिये एक रचनात्मक काम था। उनकी लिखी यह डायरी भोपाल से **एकलव्य** ने प्रकाशित की है। अंग्रेजी से इसका अनुवाद **पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा** ने किया है। जिन शिक्षकों ने अब तक यह पुस्तक नहीं पढ़ी है- वे अनुभवों के एक बड़े खजाने से वंचित हैं। पाठक कृपया एकलव्य को चिट्ठी लिखकर पुस्तक प्राप्त कर सकते हैं। ❑ सं.

एकलव्य
ई-१०, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल-४६२०१६
मूल्य - १५० रुपये मात्र

सत्संग और शिक्षा

❑
योगी रमणनाथ

डॉ. छगन मोहता कहा करते थे कि सत्संग शिक्षण और प्रशिक्षण का एक बहुत कारगर माध्यम है। उन्हें इसका अनुभव था। वे बीकानेर में श्री रामगोपाल मोहता के साथ सामंती राज में नियमित सत्संग का आयोजन किया करते थे। तब यह सत्संग समाज परिवर्तन के बीज बोने के प्रच्छन्न आयोजन के रूप में किया जाता था। बहुत विनम्रता एवं सम्पूर्ण भक्ति भाव के साथ आयोजित किये जाने वाले ये दैनिक सत्संग प्रतिदिन स्वाध्याय की प्रेरणा भी देते थे। पढ़ने की रुचियां जगाते हुए वहां पुस्तकें भी परोसी जाती थी। एक बड़ा समर्थ पुस्तकालय था-बीकानेर के मोहता भवन में। जब महाराजा गंगासिंहजी को इस नियमित आयोजन की खबर लगी तो न केवल सत्संग पर पाबंदी लगायी गयी बल्कि श्री रामगोपाल मोहता को देश निकाला भी दे दिया गया। बीकानेर में उनका प्रवेश वर्जित था, मगर सत्संग का आयोजन गली-कूंचों में कहीं न कहीं चलता रहता था। सत्संग के ऐसे शैक्षिक प्रवाह पर चर्चा कर रहे हैं -योगी रमणनाथ। ❑ सं.

सत्संग के नाम से ही सुख और शांति का आभास होता है। मानव की उत्पत्ति के साथ ही संग का आविर्भाव हुआ था और जहां संग अस्तित्व में आया वहां सत्संग का महत्त्व अपने आप ही जाना जाने लगा। सत्संग मानव मात्र के आकर्षण का केन्द्र रहा है। वर्तमान समय में सत्संग का उल्लेख होते ही प्रचलित धारणा के अनुसार कल्पना यह की जाती है कि किसी संत-महात्मा का धार्मिक विषय पर प्रवचन का आयोजन होगा अथवा कोई भजन-कीर्तन मंडली द्वारा गायन का कार्यक्रम रखा गया होगा या फिर किसी धार्मिक विषय पर परस्पर वार्तालाप या गोष्ठी का आयोजन होगा। जबकि वास्तविकता यह है कि किसी भी सात्विक विचारों वाले व्यक्ति के साथ बैठ कर परस्पर चर्चा करना, अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए प्रश्नोत्तर करना सत्संग है और उसके विषय अथवा प्रकरण अनेक हो सकते हैं। शिक्षण की इस प्रथा में यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षा देने तथा लेने वाले के बीच एक निश्चित उम्र का अनुपात हो अथवा दोनों के बीच ज्ञान अथवा जानकारियों के अपार भंडार की आवश्यकता हो। जिसके पास जितना है उसका परस्पर आदान-प्रदान सत्संग के माध्यम से होता है। प्राचीन काल में जब औपचारिक शिक्षा का आरम्भ नहीं हुआ था तब सत्संग शिक्षा का सशक्त और एक मात्र माध्यम था। नई पीढ़ी को शिक्षा देने का दायित्व घर-समाज के बड़े-बुजुर्गों का था। वे इस दायित्व का निर्वाह इसी सत्संग के माध्यम से करते थे।

सत्संग से शिक्षा देने एवं ग्रहण करने का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इसमें केवल किताबी या सैद्धांतिक ज्ञान अर्जित नहीं किया जाता, अपितु ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को समझने और जीवन में उतारने का

अवसर मिलता है और यही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है।

सत्संग से शिक्षण का एक माध्यम है-शक्तिपात। यह माध्यम उन सिद्ध-महात्माओं के द्वारा अपनाया जाता था जो साधना के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान और सिद्धियां अर्जित करते थे। ऐसे महात्मा अपने पास आने वाले जिज्ञासु पात्र के प्रारब्ध को जानकर शक्तिपात के द्वारा ज्ञान देकर उपकृत करते थे। प्राचीन काल में ऐसे अनेक गुरु-शिष्यों का उल्लेख हमारे वैदिक और आध्यात्मिक साहित्य में मिलता है। रामकृष्ण परमहंस ने अपने प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानंद को शक्तिपात के द्वारा ही अपनी सिद्धि-सामर्थ्य प्रदान की थी जिसके बल पर वे विश्व में भारतीय वैदिक ज्ञान को पुन: प्रतिष्ठित कर पाये। आद्य शंकराचार्य जी के कई शिष्य उनके साथ रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। एक दिन शिक्षा-शास्त्र आरम्भ हो गया, लेकिन वे अपने एक शिष्य का इंतजार कर रहे थे। अन्य शिष्य यह जानकर किंचित व्यंग से मन ही मन सोच रहे थे कि जिसकी प्रतीक्षा गुरुदेव कर रहे हैं वह तो निपट अज्ञानी सा है। इस विषय के अध्यापन के लिए उसका इंतजार किया जाना व्यर्थ है। गुरुदेव ने उनके मन के भावों को ताड़ लिया और अपने उस शिष्य पर कृपादृष्टि की। थोड़ी देर बाद ही वह शिष्य नदी किनारे से स्नान कर शिक्षा-सत्र के लिए आ रहा था तो अतिक्लिष्ट तोटक छंद में स्वनिर्मित गुरुवंदना के श्लोकों का उच्चारण करता हुआ आया। यह सुनकर अन्य शिष्यों के मुंह आश्चर्य से खुले ही रह गये और गुरुदेव ने उस शिष्य का नामकरण किया तोटकाचार्य। वही तोटकाचार्य आगे चलकर प्रसिद्ध विद्वान हुए, जिन्होंने कई ग्रंथों की रचना की।

महापुरुष अपने आचरण तथा संकेत मात्र से शिष्यों को अपने ज्ञान से लाभान्वित करते हैं। इसकी सर्वोत्तम मिसाल भगवान श्री कृष्ण हैं जिन्होंने अर्जुन को गीता का ज्ञान दिया था।

सत्संग से शिक्षण का एक माध्यम है-शक्तिपात। यह माध्यम उन सिद्ध-महात्माओं के द्वारा अपनाया जाता था जो साधना के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान और सिद्धियां अर्जित करते थे। ऐसे महात्मा अपने पास आने वाले जिज्ञासु पात्र के प्रारब्ध को जानकर शक्तिपात के द्वारा ज्ञान देकर उपकृत करते थे। प्राचीन काल में ऐसे अनेक गुरु-शिष्यों का उल्लेख हमारे वैदिक और आध्यात्मिक साहित्य में मिलता है। रामकृष्ण परमहंस ने अपने प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानंद को शक्तिपात के द्वारा ही अपनी सिद्धि-सामर्थ्य प्रदान की थी जिसके बल पर वे विश्व में भारतीय वैदिक ज्ञान को पुन: प्रतिष्ठित कर पाये।

राजा जनक का प्रश्नोत्तर के माध्यम से विभिन्न ऋषि-मुनियों से ज्ञान अर्जन करने का दृष्टांत तो अपने आप में अनूठा है ही, वे अपने द्वारा अर्जित और अनुभूत ज्ञान को उदारता पूर्वक जिज्ञासुओं को उसी माध्यम से प्रदान भी करते थे। योगवशिष्ठ, पातंजल योग प्रदीप आदि ग्रंथ भी इसी पद्धति से शिक्षण के पुस्तककार स्वरूप हैं।

समाज शास्त्रियों ने शिक्षा के व्यवस्थित स्वरूप की आवश्यकता महसूस की तथा उसके लिए शिक्षा के स्थाई केन्द्रों की स्थापना का विचार आया। ये केन्द्र गुरुकुलों के रूप में अस्तित्व में आये। वहां आचार्य ऋषि-मुनि गृहस्थ अथवा विरक्त होते थे। इन गुरुकुलों में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन जीते हुए अपने गुरु और गुरुमाता के सतत सान्निध्य में रहते थे। इन गुरुकुलों में गुरु-शिष्य विविध विषयों के सैद्धांतिक और व्यवहारिक पक्ष को समझने-समझाने और जीवन में उतारने का प्रयास करते थे। वहां पर अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाकर अनुभव करने की व्यवस्था भी होती थी। इन गुरुकुलों में शिष्य के सर्वांगीण विकास के लिए व्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन के साथ उनकी परख भी व्यावहारिक तौर पर यह जानने के लिए की जाती थी कि इसने अर्जित ज्ञान को आत्मसात कर लिया है, अपने जीवन का अंग बना लिया है अथवा केवल ज्ञानदंभ की पुष्टि के लिए इसने कुछ सीखा है। गुरु का प्रयास यह रहता था कि शिष्य का जीवन गठन इस प्रकार हो कि वह भावी जीवन सम्मानित और जिम्मेदार नागरिक के रूप में जीये। शिष्य भी अपने गुरु के आशय को जान कर वैसा ही बनने का प्रयास करते थे।

जो बालक इन गुरुकुलों में नहीं पहुंच पाते थे उनकी शिक्षण की जिम्मेदारी परिवार-समाज के बड़े-बुजुर्गों की होती थी। बाल्यकाल में दादा-दादी, नाना-नानी अथवा घर के अन्य बड़े-बूढ़ों की गोद में बैठकर, उनके आंचल में मुंह छुपाकर, उनके बिस्तरों में घुसकर प्यार-दुलार की उष्मा के वातावरण में छोटी-छोटी पशु-पक्षियों, परियों की कहानियों के माध्यम से जो शिक्षण होता था वह व्यक्ति के जीवन की अनमोल और अमिट धरोहर बन जाती थी। इन कहानियों में महापुरुषों के प्रेरक जीवन प्रसंगों, पुराणकालीन पात्रों के जीवनवृत्त का

बड़ा ही रोचक और प्रभावकारी वर्णन होता था। अनेक महापुरुषों में अपनी आत्मकथाओं में अपने जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अनेक प्रसंगों का वर्णन विस्तार से कृतज्ञता के साथ किया है।

किशोरावस्था में दादा-दादी व नाना-नानी की कहानियों से अर्जित ज्ञान से आगे और जानने की ललक उन्हें चौपाल में बैठे बुजुर्गों के पास पहुंचा देती थी। अलाव के पास तापने बैठे अनुभवीजनों की गंभीरता और गरिमा उन्हें अपने पास बुला लेती थी। वहां कहावतों, लोकोक्तियों, विविध पहेलियों, समस्यापूर्ति के माध्यम से जगत् के वास्तविक अनुभवों से साक्षात्कार का अवसर सहज ही मिल जाता था।

भ्रमणशील मंडलियां अपने क्षेत्र के अनुभवों और ज्ञान को बांटने के लिए दूर-दूर तक जाती थी। वे अपने नाटकों, गीतों, तमाशों, कथावार्ताओं के द्वारा स्थान-स्थान पर रात्रि के समय लोक शिक्षण का कार्य अति सहजता से किया करते थे। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा-सत्य के प्रयोग में इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि बचपन में देखे हरिश्चन्द्र नाटक ने मुझे सत्य का आग्राही बनने के संस्कार दिये थे। फड़ बांचने वाले भोपे, जागे, भाट आदि भी इस लोक-शिक्षण की परंपरा को बखूबी निभाते आये हैं, जो एक प्रकार का सत्संग ही होता था। ब्राह्मण, पुरोहित, बड़वा, चारण भी ज्ञान के वाहक रहे हैं। उनसे अपने देश की विभिन्न क्षेत्रों की विविध प्रकार की जानकारी आम आदमी को सुलभ होती थी।

तीर्थाटन और देशाटन के लिए जाने वाले व्यक्ति इसी सत्संग के माध्यम से दूसरे क्षेत्र की सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक जानकारियों व राजनैतिक गतिविधियों से रूबरू होता था तथा लौटकर अपने क्षेत्र के वासियों के साथ उन जानकारियों को बांटता था। चीनी यात्रियों फाहियान और ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांतों से इस तथ्य की पुष्टि सहज ही हो जाती है।

कुछ काल पूर्व के अपने देश के विख्यात तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा की व्यवस्था इसी सत्संग के माध्यम से होती थी, जिसने उस समय में अनेक विद्वान, राष्ट्र और समाज को दिये थे।

वर्तमान में शिक्षा की व्यवस्था में बड़ी तेजी से हो रहे आमूलचूल परिवर्तनों के बावजूद संस्कार निर्माण के लिए शिक्षण के इस सशक्त माध्यम की उपयोगिता आज भी उतनी ही है जितनी प्राचीन काल में थी। ❑

सद्संस्कार समिति, सुख सागर,
सांभर लेक, जयपुर

कृपया अनौपचारिका से दोस्ती करें

❑

मैत्री समुदाय

यह समुदाय अनौपचारिका के मित्रों का समुदाय है। ऐसे मित्रों का जो इसे स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। उनका जो इसे पांवों पर खड़ा करना चाहते हैं। उनका जो इस पत्रिका को सामाजिक एवं सामुदायिक सहयोग से संपन्न होने वाला सफल आयोजन बनाना चाहते हैं। ऐसे प्रेमी मित्रों का एक विशद समुदाय बनाना हमारा सपना है। क्या आप इस मैत्री परिवार के सदस्य हैं ? यदि नहीं हैं तो कृपया शीघ्र बनिए। हमारे सपने को साकार करने में सहयोग दीजिए। चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से रुपये एक हजार पांच सौ अथवा उससे अधिक श्रद्धानुसार शीघ्र भिजवाइए। ड्राफ्ट या चैक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर अथवा अंग्रेजी में Rajasthan Adult Education Association के नाम हो।

हमारा पता है -

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४

हम अनौपचारिका के हर पाठक एवं हर सहयोगी संस्था से अपील करते हैं कि मैत्री-समुदाय की सदस्यता शीघ्र ग्रहण करें। सादर। ❑ **संपादक**

भागती जिंदगी और पीछे छूटता जीवन

❑

विजया सती
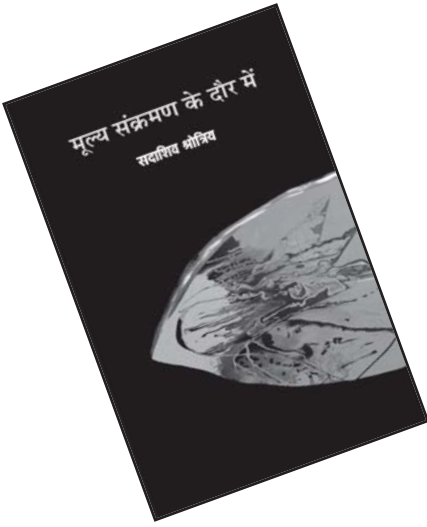
कवि शिक्षक-चिन्तक **सदाशिव श्रोत्रिय** द्वारा लिखे गये उन्नसी निबंधों का संकलन **'मूल्य संक्रमण के दौर में'** पाठक से सीधा संवाद करने की उनकी कोशिश का साकार रूप है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले ये निबंध भले ही पिछली सदी के अंतिम दशक में रचे गये, किन्तु इनमें व्यक्त लेखकीय चिंताओं और सरोकारों की सार्थकता वर्तमान परिदृश्य के कई आयामों के प्रति यथावत बनी हुई है। इन आलेखों को सारगर्भित बनाती है, निबंधकार की गहन सघन संवदेनशीलता और बहुतस्तरीय करुणा। ये निबंध आज के उन त्वरित किन्तु सतही बदलावों की ओर इंगित करते हैं जो जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं।

आज यत्र-तत्र-सर्वत्र मूल्यों से भटकाव लक्षित हो रहा है -क्या शिक्षा, क्या अन्य संस्थान, क्या धर्म, क्या सांस्कृतिक-स्वास्थ्य-साहित्य-भाषा-सभी जगह परम्परागत मूल्यों से विचलन दिखाई दे रहा है। तथाकथित विकास की चमकदार किन्तु उबड़-खाबड़ गलियों में एक और यदि राष्ट्रभाषा की अनुपस्थिति दुखद है, तो दूसरी ओर भौतिकता के प्रति अतिमोह भी आज के जीवन को अपनी ओर बहाये लिए जा रहा है। इस दौर में संचार माध्यमों की भूमिका भी प्रशंसनीय नहीं है, जो वस्तुस्थिति की वास्तविकता के स्थान पर तमाम किस्म के प्रपंच को प्रश्रय देती हैं। अनुभव प्रसूत इन निबन्धों की मूल कथ्य यही है कि उथल-पुथल के दौर के चलते ऊपरी बदलाव की प्रक्रिया में कितना कुछ तहस-नहस हो रहा है, उसकी भरपाई की चिंता कैसे है ? इस अस्त-व्यस्तता के बीच कृतिकार सर्जनात्मक मध्यम मार्गीय दृष्टि के अपनाव की मांग करता है। वह स्पष्ट कहता है कि संक्रमण काल में यदि कुछ छूट भी रहा है तो कुछ मूल्यवान बच भी तो जाना चाहिए। इन निबन्धों में जीवन-मूल्यों, आदर्शों ओर मान्यताओं को खोते चले जाने के दु:ख की अभिव्यक्ति है। दुनिया तेजी से बदल रही है, यह स्वीकृति तो है। किन्तु उस बदलाव में से कुछ सारवान सहेजने का प्रयत्न करने की लेखकीय आकांक्षा नि:शेष नहीं है। इसलिए इन निबन्धों में लेखक की वे सहज मार्मिक चिंताएं अंकित हैं, जो केवल अपने में सिमटती जा रही दुनिया को देख कर होने वाले उस क्षोभ से ऊपजती हैं, जहां स्वांत:सुखाय का वृहत्तर अर्थ गायब है।

किन्तु इसके विपरीत वर्तमान समय की आत्मकेन्द्रित जीवन-चर्या का अति सीमित दायरा जिस खतरे की ओर ले जा रहा है, श्रोत्रिय जी उसके सभी आयामों को रेखांकित करते हैं। उत्सव-धर्मी मनुष्य जाने कहां खो गया है, वहां भी एक दिखावा आ बैठा है। **'रहम कीजिए इन उद्यानों पर'** शीर्षक आज के इंसान के भीतर जागे असंतोष की उन विघटनकारी मुद्राओं का आलेख है। जो प्रकृति को रौंद रही हैं। प्रकृति से मनुष्य का नाता टूटा है, वह अपने स्वार्थ, अकर्मण्यता और उपेक्षा-भाव से प्रकृति के उपहार नष्ट करने पर तुला है जिसे कृत्रिमता की बाढ़ आ गयी है। इस स्पर्धा और भौतिक समृद्धि के आलम में आत्मा का ह्वास निश्चित ही हुआ है। लेखक ऐसी सामाजिक विकृतियों पर आघात करता है जो इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।

इन निबन्धों में लेखक दृष्टि ऐसे **'आत्मालोचन'** की है जो प्रगति की ओर ले जाये। इन उन्नीस निबन्धों में से पांच निबंध आज के एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न से जूझते हैं- वह है हमारा शिक्षा-तंत्र। उच्च शिक्षा की विसंगतियां, राष्ट्र भाषा का प्रश्न, राष्ट्रीय संपर्क भाषा हिन्दी, शिक्षा में आत्मकेन्द्रित, हालात महाविद्यालयों के- इन शीर्षकों के अन्तर्गत निबंधकार वर्तमान समय में इस क्षेत्र में हुई बहुस्तरीय घुसपैठ को एक-एक करके निरावृत्त कर देता है। वह न केवल अगंभीर अनधिकारी विद्यार्थी की खबर लेता है, इसके साथ ही अभिभावक, शिक्षक और समाज के स्तर पर क्रियाशील निहित स्वार्थों का भी **रहस्योद्घाटन** करता है। उसके मन में शिक्षा-स्तर पर शैक्षणिक के साथ-साथ नैतिक योग्यता की भी चाह है। अंग्रेजी भाईचारा दूर करती है और हिन्दी जोड़ती

है, इसलिए लेखक शिक्षा में विदेशी भाषा पर निर्भरता के खिलाफ है और अंग्रेजी का परावलंबन छोड़ना जरूरी मानता है। वह मानता है कि हम अंग्रेजी से केवल शब्द उधार नहीं लेते बल्कि विचार भी उधार लेते हैं। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता का ह्रास, उसका वास्तविक ध्येय से भटकाव, डिग्री पाने की होड़, अंग्रेजी की मोहिनी का प्रभाव, अंक केन्द्रित शिक्षापद्धति में सर्वांगीण विकास की अवधारणा का लुप्तप्राय स्वरूप-ऐसे तमाम प्रश्नों पर इन निबन्धों में विचार किया गया है। शिक्षा में भी आत्मकेन्द्रिता का ही बोलबाला होने पर कैसे समाज या राष्ट्र निर्माण के स्थान पर छात्र या संस्था की सफलता ही प्रमुखता पाती है, केवल परीक्षा-परिणाम और सफलता-सूची को ही आंकने से उच्च शिक्षा के स्तर में कितनी गिरावट और खोखलापन आया है, उसे व्यक्त करने में लेखक की कलम पूरी तरह से सक्षम है। शैक्षिक वातावरण किस तरह कितना इससे दूषित हुआ है, इसका एक उदाहरण ट्यूशन की बाढ़ है, जिसे लेखक शिक्षा प्रणाली की कुरूपता को ढंकने के प्रयास के रूप में देखता है।

आज हर क्षेत्र में बाजार का प्रवेश हो गया है, वह प्रेम हो, धर्म या शिक्षा या प्रकृति। कुछ भी सहज-स्वाभाविक न रह गया है। गहन सम्पृक्ति के बोध का ह्रास सब ओर दिखाई देता है। संबंधों का औपचारिक निर्वाह मात्र होता है। ऐसे में अपना उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति प्रबल हुई है। परिवार भी इसकी चपेट में आने से नहीं बचे रह सके। इस स्थिति में संघर्ष तो बढ़े हैं पर नैतिकता और मनुष्यता खो गई है। सादगी, सरलता, त्याग जैसी मान्यताएं जीवन से बहिष्कृत हो गई हैं, बेहतर इन्सान बनने का लक्ष्य किसी के सम्मुख नहीं रहा, जीवन केवल 'दो पैसे से दस पैसे तक पहुंचने का पुल' बन गया है। कोई अपने भीतर झांकने की कोशिश नहीं करता। सब पर स्वार्थमयी व्यापारिकता हावी है।

इन निबन्धों में लेखक ने कई सार्थक प्रश्न उठाए हैं। भारतीय दृष्टि की समग्रता को ढूंढने के क्रम में छोटे-छोटे सच उजागर किये हैं। जैसे यही कि उदारता और कंजूसी को लेकर समूची सामाजिक सोच में जो बदलाव आया है, उसी से संचालित जन मानस यह जानने की कोशिश क्यों नहीं करता कि जीवन का वास्तविक मूल्य कहां छिपा है ? किसी दिन-विशेष की कृत्रिम तामझाम में या रोजमर्रा की सहजता में ? यह स्वाभाविकता के नष्ट होते चले जाने के क्रम में जीवन के प्रतिपल समृद्ध होते जाने का एक झूठा दिलासा है। लेखक सटीक कहता है कि विशिष्ट अवसर वाला दर्शन दरिद्र दर्शन है, जबकि जीवन में हर क्षण अर्थवान है। विशिष्ट अवसर की प्रतीक्षा में जीना और दैनंदिन को उपेक्षित करना कहां तक उचित है ? इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता है कि जीवन में सुंदरता और व्यवस्था की खोज हर दिन होनी चाहिए, न कि किसी विशेष दिन के लिए सब कुछ को स्थगित रखना चाहिए। हर दिन का श्रम सार्थक है। विशिष्ट अवसर पर केवल प्रदर्शन होता है जबकि नित्य का स्वभाव नैसर्गिक है। जयशंकर प्रसाद ने **'उत्सव के पीछे का मलिन अवसाद'** देखा था, यहां उत्सव के पहले के साज-संवार की भर्त्सना है।

निबंधकार की चिंता का विषय यह भी है कि नाथद्वारा जैसा तीर्थ स्थल बाजार में बदल कर विरूपित हो गया है। उपभोक्ता संस्कृति का घुन।❑

अनौपचारिका के प्रकाशन का विवरण

फार्म-४

१. पत्र का नाम	अनौपचारिका
२. भाषा	हिन्दी
३. अवधि	मासिक
४. वार्षिक शुल्क	एक सौ पचास रुपये
५. प्रकाशक का नाम	रमेश थानवी
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
६. प्रकाशन का स्थान	जयपुर
७. मुद्रक का नाम	रमेश थानवी
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	उपर्युक्त
८. मुद्रणालय का नाम	कुमार एंड कम्पनी
९. संपादक का नाम	रमेश थानवी
१०. मालिक का नाम	राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर
११. क्या यह नया प्रकाशन है	नहीं

हस्ताक्षर

रमेश थानवी

(संपादक, प्रकाशक, मुद्रक)

प्रो.दयाकृष्ण स्मृति व्याख्यान

❑

यह हर्ष का विषय है कि **प्रोफेसर आशा मुकर्जी**, दर्शन विभाग, शांति निकेतन के अथक प्रयास से **प्रोफेसर दयाकृष्ण** की स्मृति में एक विद्वत परिषद का गठन हुआ जिसे 'दयाकृष्ण अकेडमिक फाउन्डेशन का नाम दिया गया। इस संस्था के तत्वावधान में तथा दर्शन विभाग, राजस्थान यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर योगेश गुप्ता के सहयोग से एवं प्राकृति भारती अकादमी के डा. डी.आर. मेहता के सौजन्य से, प्रथम दया कृष्ण स्मृति व्याख्यान प्राकृति भारती अकादमी के सभागार में निष्पन्न हुआ। व्याख्यान के लिए **पद्मभूषण प्रो. मृणाल मिरी** को आमंत्रित किया गया था। **प्रो. मिरी** का अध्ययन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुआ। उन्होंने नेहू विश्वविद्यालय में अध्यापन किया, और वहीं वे उस विश्वविद्यालय में वाइस चान्सलर भी रहे। वे इन्डियन काउन्सिल ऑव फिलौसिफिकल रिसर्च के चेयरमैन तथा इंडियन इन्स्टिट्यूट ऑव एडवांस स्टडीज के डायरेक्टर भी रहे। अनेक राष्ट्रीय परिषदों के सदस्य रहते हुए भी वह अध्ययन रत रहे हैं। सम्प्रति वे राजीव विश्वविद्यालय, अरुणाचल में चांसलर हैं। स्मृति व्याख्यान के लिए जो विषय उन्होंने चुना वह था **एन्थ्रौपोलोजि एज फिलॉसोफि** । ज्ञान के विशद स्वरूप की व्याख्या करते हुए उन्होंने यह इंगित किया कि अर्थ अथवा अभिप्राय का संधान नृशास्त्र को दार्शनिक संधान का रूप प्रदान करता है।
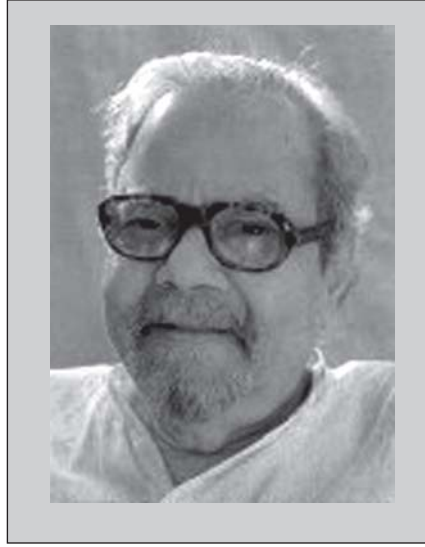
पद्मश्री मुकुन्दलाट ने अपने सभापतीय उद्‍बोधन में कथा साहित्य में सन्निहित समझ के व्यापार की ओर संकेत किया। प्रो. लाट राजस्थान विश्वविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता रहे हैं। उन्होंने मध्ययुगीन 'अर्धनाटक' को हिन्दी में प्रकाशित किया। काव्य, चित्रकला तथा संगीत में उनकी गहन अभिरुचि है। उन्होंने पंडित जसराज से संगीत की शिक्षा भी ली है। वत्सल निधि के व्याख्यानों में उन्होंने संगीत और चिन्तन के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। आर.एस. भटनागर ने, अंत में इस ओर इशारा किया कि अन्य मनस की समझ अन्ततः स्वयं की समझ पर आश्रित है। परन्तु स्वयं की समझ स्वयं एक सतत संधान की मांग करती है। प्रो. आशा मुकर्जी ने आरम्भ में ही 'फाउन्डेशन' के गठन, उसके उद्देश्यों का परिचय दिया। इन उद्देश्यों में, स्मृति व्याख्यान, सेमिनार तथा एक शोध पत्रिका को निकालना तो शामिल है ही, परन्तु उसके अतिरिक्त ऐसी सुविधाओं के लिए व्यवस्था भी करनी है जो देश में शोधार्थियों को संभव सहायता देने में सक्षम हो। फाउन्डेशन का वित्तीय पक्ष अभी केवल सदस्यता शुल्क पर ही निर्भर है। अधिक से अधिक संख्या में उसका सदस्य बनकर उसी मदद की जा सकती है।

अंत में प्रोफेसर के.एल. शर्मा ने दयाजी का स्मरण करते हुए धन्यवाद ज्ञापन किया। उन्होंने दया जी की दृष्टि तथा विचार प्रणाली पर प्रकाश डाला। **प्रो. के.एल. शर्मा** वृद्धों के हित तथा कल्याण की चिन्ता में अपने युवा काल से ही रुचि लेते रहे हैं। सम्प्रति इस संदर्भ में वे एक संस्था का संचालन भी कर रहे हैं, तथा उसी संदर्भ में वे एक त्रैमासिक शोध पत्रिका भी प्रकाशित करते है। ❑

शिक्षकों एवं लेखकों से अपील

❑

{शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे हर नव-प्रयोग को हम सविस्तार अनौपचारिका में प्रकाशित करना चाहते हैं। शिक्षकों और शिक्षाकर्मियों से अनुरोध है कि वे अपने प्रयोगों अथवा नये प्रयासों के अनुभव लिखकर भिजवायें। हमें अच्छे लेखों व शिक्षा की नयी किताबों पर टिप्पणियों की भी प्रतीक्षा रहती है। पाठक अपनी रचनाएं भिजवाकर अनुग्रहीत करें। रचना के साथ रचना संबंधी फोटो तथा स्वयं का फोटो भी अपने संक्षिप्त परिचय के साथ अवश्य भिजवायें। ❑ सं.

हमारी नजर : उस पार

संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रमेश थानवी के लिए कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका | RNI 43602/77

वामन
के
तीन डग